Chapter-1

अध्याय-1

हिन्दी साहित्य और उसमें अनुवाद की परंपरा

1.1 हिन्दी साहित्य : उद्‌भव एवं विकास

- 1.1.1 पूर्वपीठिका
- 1.1.2 काल विभाजन

1.2 हिन्दी साहित्य में अनुवाद की परंपरा

- 1.2.1 संस्कृत साहित्य के हिन्दी अनुवाद की परंपरा
- 1.2.2 अंग्रेजी साहित्य के हिन्दी अनुवाद की परंपरा
- 1.2.3 अन्य भाषाओं के हिन्दी अनुवाद की परंपरा

1.3 अनुवाद की संकल्पना

- 1.3.1 अनुवाद शब्द : व्युत्पत्ति और अर्थ
- 1.3.2 अनुवाद की परिभाषा
- 1.3.3 अनुवाद : शिल्प, कला और विज्ञान
- 1.3.4 अनुवाद प्रक्रिया और प्रकार

अध्याय-1

हिन्दी साहित्य और उसमें अनुवाद की परंपरा

1.1 हिन्दी साहित्य : उद्भव एवं विकास

किसी भी भाषा के उद्भव का कोई निश्चित समयबिन्दु नहीं होता एक अंतराल होता है । इसीलिए हिन्दी साहित्य के उद्भव को निश्चित करने में अनेक विद्वानों के विभिन्न मत हैं ।

चूँकि साहित्य भाषा से संबंधित है इसलिए साहित्य का उद्भव भाषा के उद्भव से होता है । अतः हिन्दी साहित्य का उद्भव हिन्दी भाषा के उद्भव से संबंधित है ।

संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश आदि भारतीय आर्यभाषाओं में कहीं भी 'हिन्दी' शब्द नहीं है ।[1] ऐसा माना जाता है कि संस्कृत शब्द 'सिंधु' से 'हिन्दी' शब्द का संबंध है । 'सिंधु' नदी के नाम से इस नदी के आसपास के प्रदेश को भी 'सिंधु' कहा जाता था । यही शब्द ईरान में जाकर 'हिन्दू' और फिर 'हिन्द' हुआ जिसका अर्थ होता था - 'सिंध प्रदेश' । ईरानी लोग भारत के अधिकांश भाग से सुपरिचित हुए और 'हिन्द', शब्द समग्र भारत के लिए प्रयुक्त होने लगा। ईरानी भाषा का ईक प्रत्यय लगने से 'हिन्दीक' शब्द बन गया जिसका अर्थ होता था 'हिन्द का' । इस 'हिन्दीक' शब्द का विकास होकर युनानी भाषा में 'इन्दि का' और अंग्रेजी भाषा 'इन्डिया' शब्द बन गया ।[2]

छठी शताब्दी में नौशेरवा के एक कवि ने पंचतंत्र का अरबी भाषा में अनुवाद करते समय पंचतंत्र की भाषा को 'ज़बाने हिन्दी' नाम दिया । ग्यारहवीं शताब्दी में अल्बरुनी ने संस्कृत, प्राकृत आदि हिन्दी प्रदेश की भाषाओं को 'अल हिन्दयः' कहा । अमीर ख़ुसरो ने अपने फारसी-हिन्दी कोश 'ख़ालिकबारी' में देशी भाषा के अर्थ में 'हिन्दी' और 'हिन्दवी' शब्दों का प्रयोग किया है । अमीर ख़ुसरो के समय तक किसी एक भाषा के लिए हिन्दी शब्द का प्रचलन नहीं हुआ था । तत्कालीन समय में 'भाषा', 'हिन्दी' और 'हिन्दवी' तीनों शब्दों का सामान्यतः समान अर्थों में प्रयोग होता था ।

---

1. हिन्दी साहित्य का इतिहास, डॉ. हरिश्चद्र वर्मा, पृ.20
2. हिन्दी साहित्य का इतिहास, डॉ. नगेन्द्र, पृ.11

मुसलमान कवि हिन्द की देशी भाषा को 'हिन्दी' या हिन्दवी कहते तो संस्कृत के पंडित इसे 'भाषा' या 'भाखा' कहते थे। इसी बात की पुष्टि में तुलसीदास ने कहा - "का भाषा, का संस्कृत, प्रेम चाहिए साँच" । कबीर ने भी इस भाषा को गौरव देते हुए कहा - "संस्कृत है कूप जल, भाषा बहता नीर ।"[1]

तेरहवीं शताब्दी के बाद मध्य देश की बोली के अर्थ में 'हिन्दी' शब्द का प्रयोग होता रहा । इसी संदर्भ में आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने हिन्दी की परिभाषा देते हुए कहा है - "राजस्थान और पंजाब राज्य की पश्चिमी सीमा से लेकर बिहार के पूर्वी सीमान्त तक तथा उत्तर प्रदेश के उत्तरी सीमान्त से लेकर मध्य प्रदेश के मध्य तक के अनेक राज्यों की साहित्यिक भाषा को हिन्दी भाषा कहते हैं ।"[2]

डॉ. उदयनारायण तिवारी के अनुसार - "आचार्य हेमचन्द्र के पश्चात तेरहवीं शताब्दी के आरंभ में आधुनिक भारतीय भाषाओं के समय से लेकर पंद्रहवीं शताब्दी के पूर्व तक का काल संक्रांति काल था जिसमें भारतीय आर्य भाषा धीरे-धीरे अपभ्रंश की स्थिति को छोड़कर आधुनिक काल की विशेषताओं से युक्त होती जा रही थी ।" डॉ. नामवर सिंह का मानना है - "तेरहवीं शताब्दी तक जाते-जाते अपभ्रंश के सहारे ही पूर्व और पश्चिम के देशों ने अपनी-अपनी बोलियों का स्वतंत्र रूप प्रकट किया था । अतः हिन्दी का उद्भव यहाँ से माना जा सकता है । डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी सन् 1000 ई. से हिन्दी साहित्य का उद्भव मानते हैं । उनका कहना है कि हिन्दी का विकास हेमचन्द्र सुरि द्वारा लिखित 'प्राकृत व्याकरण' में उद्धृत उस ग्राम्य अपभ्रंश से हुआ जिसमें रासक, डोम्बिका आदि लिखे जाते थे । यही ग्राम्य अपभ्रंश आधुनिक भारतीय भाषाओं के रूप में विकसित हुई । डॉ. हरिश्चन्द्र वर्मा के अनुसार "हिन्दी भाषा का उद्भव तेरहवीं शताब्दी के बाद हुआ है । अपभ्रंश के संस्कारों से पूरी तरह मुक्त होने और अपना एक स्वतंत्र स्वरूप अर्जित करने में हिन्दी को लगभग ढाई सौ वर्ष लग गए ।"[3]

---

1. हिन्दी साहित्य का इतिहास, डॉ. हरिश्चद्र वर्मा, पृ.20
2. वही ।
3. वही ।

शिवसिंह सरोज हिन्दी साहित्य का उद्‌भव सातवीं शताब्दी से मानते हैं, तो आचार्य राम प्रसाद शुक्ल संवत् 1050 से हिन्दी साहित्य का उद्‌भव मानते हैं । डॉ. गणपति चंद्र हिन्दी साहित्य का उद्‌भव बारहवीं शताब्दी से मानते हैं जबकि डॉ. सुनीति कुमार चेटर्जी, डॉ. नामवर सिंह आदि इसका उद्‌भव चौदहवीं शताब्दी से मानते हैं ।[1]

विकास : ई. पू. 1500 से ई. पू. 500 तक के काल में संस्कृत बोलचाल की भाषा थी, परंतु पश्चिमोत्तरी, मध्य देशी और पूर्वी नामक बोलियाँ विकसित होती जा रही थीं । ई. पू. 500 के बाद संस्कृतकालीन बोलचाल की भाषा विकसित हुई जिसे 'पालि' की संज्ञा दी गई । प्रथम ईसवी तक यह बोलचाल की भाषा और अधिक परिवर्तित हुई तथा प्रथम ईसवी से 500 ईसवी तक के इसके रूप को 'प्राकृत' नाम दिया गया । 500 ईसवी से 1000 ई. तक इस भाषा में और अधिक परिवर्तित हुए और विकास हुआ इसे 'अपभ्रंश भाषा' नाम दिया गया । इन कालों में भाषा के क्षेत्रीय रूप भी भिन्न-भिन्न थे। अपभ्रंश भाषा के शौरसेनी, अर्धमागधी और मागधी रूपों से हिन्दी भाषा का उद्‌भव हुआ और फिर इसका लगातार विकास हुआ ।[2]

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि इन मतमतान्तरों के बावजूद साहित्य के विद्वान हिन्दी साहित्य का आरंभ 1000 ई. के आसपास से ही मानते हैं । और फिर अपनी विकास यात्रा करते-करते परिवर्तित होते-होते हिन्दी आज आधुनिक स्तर तक पहुँच गई है ।

1.1.1 काल विभाजन :

कोई भी भाषा सदा एक समान नहीं रह सकती, देश-काल के भेद से उसमें रूपभेद स्वत: उत्पन्न हो जाता है । इन रूपभेदों को पार करके अपने आपको सँवारती हुई हिन्दी भाषा अपनी सुदीर्घ विकासयात्रा कर चुकी है । हिन्दी भाषा के इस विकास के संदर्भ में अनेक विद्वानों ने भाषा के कालों का वर्गीकरण किया है । काल विभाजन का कार्य सर्वप्रथम डॉ. ग्रियर्सन ने किया । उसके बाद अनेकों विद्वानों ने काल विभाजन किया । डॉ. ग्रियर्सन के अनुसार हिन्दी भाषा का काल विभाजन निम्नानुसार है ।

(1) चारण काल (2) धार्मिक पुनरूत्थान काल (3) मलिक मोहम्मद का प्रेमाख्यान काल (4) ब्रज की कृष्णभक्ति (5) मुग़ल दरबार (6) तुलसीदास

---

1. हिन्दी साहित्य का इतिहास, डॉ. हरिश्चद्र वर्मा, पृ.20
2. हिन्दी साहित्य का इतिहास, डॉ. हरिश्चद्र वर्मा, पृ.6

(7) रीति काव्य (8) तुलसीदास के परवर्ती कवि (9) अठारहवीं शताब्दी (10) कंपनी के शासन में हिन्दुस्तान और (11) महारानी विक्टोरीया के शासन में हिन्दुस्तान ।

इस प्रकार ग्रियर्सन ने हिन्दी भाषा के काल विभाजन को ग्यारह अध्यायों में बाँटा है । ऐतिहासिक रूप से महत्त्वपूर्ण इस काल विभाजन में डॉ. हरिश्चन्द्र वर्मा के अनुसार अनेक त्रुटियाँ हैं । डॉ. हरिश्चन्द्र वर्मा के अनुसार इस काल विभाजन में कालों के विभाजन और अनेक नामकरण के मूल में कोई निश्चित आधार नहीं है ।[1]

मिश्र बंधुओं ने डॉ. ग्रियर्सन की तुलना में अधिक विकसित और वैज्ञानिक काल विभाजन प्रस्तुत किया ।

(1) आरंभिक काल : पूर्वारंभिक काल (700-1343 वि.)
उत्तरारंभिक काल (1344-1444 वि.)

(2) माध्यमिक काल : पूर्व माध्यमिक काल (1445-1560 वि.)
प्रौढ़ माध्यमिक काल (1561-1680 वि.)

(3) अलंकृत काल : पूर्वालंकृत काल (1681-1790 वि.)
उत्तरालंकृत काल (1791-1889 वि.)

(4) परिवर्तन काल : (1890-1925 वि.)

(5) वर्तमान काल : (1926 वि. से अब तक)

मिश्र बंदुओं के इस वर्गीकरण में भी डॉ. हरिश्चंद्र वर्मा के अनुसार अनेक त्रुटियाँ हैं । डॉ. वर्मा का कहना है कि अलंकृत काल और परिवर्तन काल युक्ति संगत नहीं हैं तथा वर्गीकरण में पद्धति की दृष्टि से भी एकरूपता नहीं है ।[2]

आचार्य रामप्रसाद शुंक्ल के अनुसार हिन्दी भाषा का काल विभाजन इस प्रकार है :

(1) आदि काल (वीरगाथाकाल, सं. 1050-1375)
(2) पूर्वमध्य काल (भक्तिकाल सं. 1375-1700)
(3) उत्तर मध्यकाल (रीतिकाल सं. 1700-1900)
(4) आधुनिक काल (गद्यकाल सं. 1900-1984)

---

1. हिन्दी साहित्य का इतिहास, डॉ. हरिश्चद्र वर्मा, पृ.28
2. वही, पृ.29

डॉ. गणपतिचन्द्र गुप्त के अनुसार हिन्दी भाषा का काल विभाजन निम्नानुसार है ।

(1) प्रारंभिक काल या उन्मेष काल (1184-1350 ई.)

  (1) धार्मिक रास काव्य परंपरा

  (2) संत काव्य परंपरा

(2) मध्यकाल या विकासकाल (1350-1857 ई.)

  (1) पूर्व मध्यकाल या उत्कर्षकाल (1350-1500 ई.)

  (2) मध्य मध्यकाल या चरमोत्कर्षकाल (1500-1600 ई.)

  (3) उत्तर मध्यकाल या अपकर्षकाल (1600-1857 ई.)

  धर्माश्रित काव्य

  (1) संत काव्य परंपरा

  (2) पौराणिक गीतिकाव्य परंपरा

  (3) पौराणिक प्रबंध काव्य परंपरा

  (4) रसिक भक्ति काव्य परंपरा

  राज्याश्रित काव्य

  (5) ऐतिहासिक रासो काव्य परंपरा

  (6) ऐतिहासिक चरित काव्य परंपरा

  (7) ऐतिहासिक मुक्तक काव्य परंपरा

  (8) मैथिली गीति काव्य परंपरा

  (9) शास्त्रीय मुक्तक काव्य परंपरा

  लोकाश्रित काव्य

  (10) रोमांसिक कथा-काव्य परंपरा

  (11) स्वच्छंद मुक्तक काव्य परंपरा

(3) आधुनिक काल (1857-1965 ई.)

  (1) भारतेन्दु युग (1857-1900 ई.)

  (2) द्विवेदी युग (1900-1920 ई.)

  (3) छायावाद (1920-1937 ई.)

  (4) प्रगतिवाद (1937-1945 ई.)

  (5) प्रयोगवाद (1945-1965 ई.)

(1) आदर्शवादी काव्य परंपरा

(अ) आदर्शवादी मुक्तक काव्य परंपरा

(आ) आदर्शवादी प्रबंध काव्य परंपरा

(2) स्वच्छंदतावादी (छायावादी) काव्य परंपरा

(3) समाजपरक यथार्थवादी (प्रगतिवादी) काव्य परंपरा

(4) अति यथार्थवादी (प्रयोगवादी) काव्य परंपरा

डॉ. गणपतिचन्द्र गुप्त की यह वर्गीकरण पद्धति वैज्ञानिकतावादी होने के बावजूद जटिल और दुर्ग्राह्य है ऐसा डॉ. हरिश्चन्द्र वर्मा का मानना है ।[1]

विभिन्न कालों की परिस्थितियों के संदर्भ में साहित्यिक गतिविधियों का व्याकरण की दृष्टि से डॉ. नगेन्द्र ने काल विभाजन प्रस्तुत किया ।

डॉ. नगेन्द्र के अनुसार हिन्दी साहित्य मुख्यतः तीन कालों में विभाजित है । हिन्दी साहित्य की शुरूआत का काल 1000 ई. से 1500 ई. तक है जिसे आदिकाल के नाम से अभिहित किया है । मध्यकाल 1500 ई. से 1800 ई. तक और आधुनिक काल 1800 ई. से अब तक ।

डॉ. नगेन्द्र के अनुसार आदिकाल (1000-1500 ई.) के साहित्य में विशेषतौर से डिंगल, मैथिली, दक्खिनी, ब्रज, अवधी और मिश्रित साहित्यिक रूप देखने को मिलते हैं । विद्यापति, नरपति, नाल्ह, गोरखनाथ, चंदबरदायी, कबीर आदि आदिकाल के प्रमुख हिन्दी साहित्यकार हैं । मध्यकाल (1500-1800 ई.) में धर्मक्षेत्र विशेष रूप से प्रभावी था जिसके कारण राम भक्ति और कृष्ण भक्ति साहित्यकारों की प्रवृति थी । राम जन्मस्थान की भाषा अवधी और कृष्ण जन्म, स्थान की भाषा ब्रज, इन दोनों ही भाषाओं में अधिकांश साहित्य की रचना हुई । इसके अलावा दक्खिनी, डिंगल, मैथिली, उर्दू तथा खड़ी बोली में भी साहित्य रचा गया । सूर, तुलसी, बिहारी, मीरा, केशव, भूषण, देव, जायसी आदि मध्यकाल के साहित्यकार हैं । मध्यकाल के बाद हिन्दी भाषा में अधिक से अधिक अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग होने लगा । नए अर्थों में पुराने शब्द प्रयुक्त होने लगे, प्रचलति होने लगे और इस तरह आधुनिक काल (1800 ई. से अब तक) की शुरूआत हुई । नए-नए शब्द आने लगे तथा नए-नए शब्द बनने लगे । अंग्रेजी तथा अरबी-फ़ारसी के जनप्रचलित शब्दों का भरपूर उपयोग होने लगा । पारिभाषिक शब्दों की आवश्यकता बढ़ने लगी ।[2]

---

1. हिन्दी साहित्य का इतिहास, डॉ. हरिश्चद्र वर्मा, पृ.28
2. हिन्दी साहित्य का इतिहास, डॉ. नगेन्द्र, पृ.12

उपर्युक्त विद्वानों के मंतव्यों से यह कहा जा सकता है कि डॉ. गणपतिचन्द्र द्वारा प्रस्तुत काल विभाजन अपने आप में पूर्ण वैज्ञानिक ढंग का है फिर भी डॉ. नगेन्द्र के द्वारा प्रस्तुत काल विभाजन अधिक ग्राह्य है ।

1.2 हिन्दी साहित्य में अनुवाद की परंपरा :

युगीन परिस्थितियों की प्रचुरता तथा किसी विचारधारा की प्रभावकता उस युग के साहित्य में अनुवाद की परंपरा को जन्म देती हैं । हिन्दी साहित्य में अनुवाद की परंपरा को जानने के लिए अनुवाद का भारतीय परिप्रेक्ष्य जानना आवश्यक होगा ।

प्राचीन भारतीय साहित्य में न तो अनूदित साहित्य ही मिलता है और न ही अनुवाद विधा ही । अनूदित साहित्य न मिलने का कारण बताते हुए डॉ. भोलानाथ तिवारी का कहना है कि उस काल में साहित्य तथा ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्र में भारत सबसे आगे था । भारतीय साहित्यकारों ने जो कुछ बाहर से सीखा-समझा उसे आत्मसात करके अपने शब्दों में अपने ढंग से व्यक्त किया जिसे अनुवाद नहीं कह सकते । हो सकता है कि कुछ अनुवाद हुए हों लेकिन कालचक्र ने उन्हें ढोना अनावश्यक समझा ।[1]

डॉ. राम गोपाल सिंह के अनुसार प्राचीन भारतीय साहित्य में अनुवाद शब्द का प्रयोग प्रचुर मात्रा में देखने को मिलता है लेकिन यह पुनःकथन, पश्चात् कथन, दुहराना, कहना, आवृत्ति, गुरु की बात का शिष्य द्वारा दुहराया जाना, सार्थक आवृत्ति, विधि या विहित का पुनःकथन आदि अर्थों में ही देखने को मिलता है; अनुवाद के आज के 'ट्रांसलेशन' के संदर्भ में कहीं भी देखने नहीं मिलता है । संस्कृत के 'अनुवाद' शब्द का 'ट्रांसलेशन' अर्थवाले आज के 'अनुवाद' शब्द से अर्थ के स्तर पर कोई सरोकार नहीं है ।[2]

डॉ. भोलानाथ तिवारी का कहना है कि 'ऋग्वेद' के कुछ अंशों की रचना आर्यों के भारत में आने के पूर्व हो चुकी थी । यही बात 'जेंदावेस्ता' के बारे में भी सत्य है । 'अवेस्ता' की अनेक पंक्तियों का ध्वन्यात्मक परिवर्तन

---

1. अनुवाद विज्ञान, डॉ. भोलानाथ तिवारी, पृ.203
2. अनुवाद विज्ञान : स्वरूप और समस्याएँ, डॉ. राम गोपाल सिंह, पृ.244

करने से वे वैदिक संस्कृति की पंक्तियाँ बन जाती हैं । अतः ऋग्वेद तथा 'अवेस्ता' दोनों के ही कुछ अंश ऐसे थे जो मूलतः उस मूल भाषा में रचे गए थे, जो इन दोनों की जननी थी और आज जो रूप इन दोनों में उपलब्ध हैं वे शायद जननीभाषा से उन पुत्री भाषाओं में सहज परिवर्तन के कारण हुए रूपांतर हैं ।[1]

प्राचीन भारतीय साहित्य में जिस तरह संस्कृत भाषा में अनुवाद की कोई कड़ी नहीं मिलती उसी तरह पालि भाषा में भी अनूदित साहित्य देखने को नहीं मिलता । डॉ. भोलानाथ तिवारी का कहना है कि अशोक के शिलालेखों पर प्राप्त सामग्री मूलतः शायद परिनिष्ठित पालि में लिखी गई होगी और फिर स्थानीय बोलियों में उनका अनुवाद करके उन्हें शिलांकित किया गया होगा । बरमा की पालि में 'धम्मपद' का मुक्तानुवाद हुआ था । पहली सदी से तिब्बत तथा चीन में भारतीय ग्रंथों के अनुवादों की परंपरा चली । प्रायः लोग यह मानते हैं कि उस परंपरा में पालि ग्रंथों के भी अनुवाद हुए परंतु अभी तक जो ग्रंथ मिले हैं, सारे के सारे बौद्ध संस्कृत ग्रंथों के अनुवाद हैं न कि पालि ग्रंथों के ।[2]

भारत में उस समय संस्कृत पालि, प्राकृत आदि भाषाओं से विदेशी भाषाओं में खूब अनुवाद हुए परंतु विदेशी भाषा से भारतीय भाषा में कोई भी अनुवाद नहीं हुआ था । डॉ. रामगोपाल सिंह के अनुसार प्राचीन संस्कृत भाषा में ही नहीं बल्कि पालि, प्राकृत और अपभ्रंश भाषा में भी न तो अनूदित साहित्य ही देखने को मिलता है और न ही अनुवाद विधा । अपभ्रंश साहित्य इस बात का प्रत्यक्ष प्रमाण है कि उसमें जो कुछ भी संचित ज्ञान है वह मौलिक है ।[3] डॉ. भोलानाथ तिवारी के अनुसार प्राकृत अपभ्रंश में पूरी-की-पूरी कोई अनूदित रचना तो कदाचित नहीं मिलती परंतु संस्कृत की 'वाल्मीकि रामायण', 'मेघदूत', 'शाकुंतल' आदि अनेक रचनाओं की कुछ पंक्तियों या छन्दों के छायानुवाद 'महावीर-चरिउ', 'पउम चरिउ', 'भविसपत्त कहा', 'सुदंसण चरिउ' आदि प्राकृत-अपभ्रंश की कृतियों में मिल जाते हैं ।[4]

---

1. अनुवाद विज्ञान, डॉ. भोलानाथ तिवारी, पृ.203
2. वही, पृ.205
3. अनुवाद विज्ञान : स्वरूप और समस्याएँ, डॉ. राम गोपाल सिंह, पृ.245
4. अनुवाद विज्ञान, डॉ. भोलानाथ तिवारी, पृ.205

हिन्दी भाषा में अनुवाद की परंपरा शुरूआत में तो व्यवस्थित रूप से देखने को नहीं मिलती परंतु जैसे-जैसे काल गति करता गया अनुवाद की परंपरा धीरे-धीरे चलने लगी । अनूदित साहित्य और अनुवाद परंपरा अपने नए आयामों के साथ विकसित होने लगे । डॉ. राम गोपाल सिंह के अनुसार हिन्दी के आदिकालीन, मध्यकालीन और रीतिकालीन कवियों ने संस्कृत, पालि, प्राकृत, अपभ्रंश साहित्य का छायानुवाद अपने साहित्य में किया । साथ ही उन्होंने इस बात की घोषणा भी नहीं की लेकिन जब एक ही तथ्य पूर्वापर परंपरा में अलग-अलग काल एवं संदर्भ के कवियों के साहित्य में यत्किंचित परिवर्तन के साथ मिलता हो तो वहाँ परवर्ती साहित्यकार के पूर्ववर्ती साहित्यकार से भाव ग्रहण करने की बात से इन्कार नहीं किया जा सकता । अर्थ या भाव की छाया हिन्दी के कवियों में यत्र-तत्र देखने को मिल जाती है ।[1]

अन्य भाषाओं की तरह हिन्दी में भी अनूदित रचना दो प्रकार से देखने मिलती है । एक तो रचना का अनुवाद और दूसरा रचना के किसी अंश का अनुवाद । डॉ. भोलानाथ तिवारी के अनुसार अनूदित साहित्य मुख्य रूप से दो रूपों में मिलता है । एक तो व्यवस्थित रूप से किसी कृति के अनुवाद के रूप में और दूसरे विभिन्न लेखकों की रचनाओं में यत्र-तत्र दूसरे के कृति अंशों या छंदों के छायानुवाद या प्रभाव रूप में । साहित्यकार प्रायः बहुपठित या बहुश्रुत होता है अतः उसके अनेक अंश प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से देश-विदेश की भाषाओं की पूर्व प्रकाशित कृतियों या उनके अंशों से प्रभावित होते हैं । यह प्रभाव कभी-कभी तो अनुवाद रूप में पड़ा मिलता है तो कभी-कभी मात्र छायारूप में ।[2]

हिन्दी साहित्य के आदिकाल, मध्यकाल और रीतिकाल के कवियों ने संस्कृत, पालि, प्राकृत और अपभ्रंश से प्रचुर मात्रा में प्रभाव ग्रहण किया है। डॉ. राम गोपाल सिंह के मतानुसार रीतिकालीन कवि तो आचार्यत्व के मोहजाल में ऐसे फँसे कि शायद ही कोई कवि मिले कि जिसके सिर पर आचार्यत्व का भूत सवार न हुआ हो और उसने कोई काव्यशास्त्रीय ग्रंथ लिखने की कोशिश नहीं की हो । इसी आचार्यत्व की होड़ ने संस्कृत के काव्यशास्त्रीय ग्रंथों के अनेक छायानुवादों ने रीतिकालीन कवियों को विवश कर दिया । संस्कृत के अक्षय ज्ञानभंडार से भाषारूपी मोती लेकर हिन्दी के

1. अनुवाद भारती, अंक-14-15 (सं.) राम गोपाल सिंह, पृ.203
2. अनुवाद विज्ञान, डॉ. भोलानाथ तिवारी, पृ.206

कवि हिन्दी भाषा में पिरोते रहे । फिर भी इस समय तक हिन्दी में अनुवाद की व्यवस्थित परंपरा के कहीं दर्शन नहीं होते ।[1]

हिन्दी साहित्य में ग्रंथों आदि के व्यवस्थित अनुवादों की परंपरा का आरंभ 16वीं सदी से हुआ है ऐसा डॉ. भोलानाथ तिवारी मानते हैं ।

हिन्दी भाषा में अनुवाद की व्यवस्थित एवं समृध्द परंपरा की शुरूआत उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्ध से हुई ।[2] अंग्रेजी भाषा ने हिन्दी की साहित्यिक श्रीवृध्दि अनुवाद के माध्यम से भरपूर मात्रा में बढ़ाई ।[3] अंग्रेजी साहित्य के हिन्दी अनुवाद का प्रारंभ होने लगा । 'हरमिट', 'एन ऐसे ओन क्रिटिसिज़्म', 'डिजर्टेड विलेज' आदि के हिन्दी अनुवाद हुए ।

स्वतंत्र भारत में भारतीय संविधान में संघ की राजभाषा के रूप में हिन्दी के आते ही हिन्दी में प्रयोजन मूलक भाषा क्षेत्रों का विकास होने लगा । प्रयोजनमूलक क्षेत्रों में अनुवाद का अपना एक विशिष्ट स्थान है । आज भारत के लगभग प्रत्येक राज्य में राजभाषा के साथ हिन्दी की भी साहित्यिक अकादमियाँ हैं जो क्षेत्रीय भाषा से हिन्दी तथा हिन्दी से क्षेत्रीय भाषा में अनुवाद करने की प्रवृत्ति को प्रोत्साहन दे रही हैं ।

1.2.1 संस्कृत साहित्य के हिन्दी अनुवाद की परंपरा :

संस्कृत के प्रसिध्द पाश्चात्य विद्वान मोनियर विलियम ने कहा था "यद्यपि भारत में पाँच सौ से अधिक बोलियाँ प्रचलित हैं परंतु हिन्दुत्व को माननेवाले सभी व्यक्तियों के लिए चाहे वे किसी भी जाति, कुल, मर्यादा, सम्प्रदाय या बोलियों की भिन्नताओं के क्यों न हों, सर्व सम्मति से स्वीकृत और समादृत एक ही पवित्र भाषा और साहित्य है और वह भाषा है - संस्कृत और साहित्य है संस्कृत साहित्य "।[4]

अपने समय में संस्कृत भाषा अति समृध्द भाषा थी । ज्ञान, विज्ञान आदि के क्षेत्र में संस्कृत भाषा इतनी समृध्द थी कि विदेशी अन्य भाषाओं से कुछ भी ग्रहण करने का अवकाश ही नहीं था । सुश्रुत, चरक आदि असंख्य आयुर्वेदाचार्यों ने संस्कृत भाषा को समृध्दि दी है । वैदिक समय से लेकर मुसलमान सत्ता के आने तक संस्कृत भाषा को राष्ट्रभाषा का दर्जा मिला हुआ था ।

1. अनुवाद भारती, सं. डॉ. राम गोपाल सिंह अंक-14-15, पृ.31
2. अनुवाद विज्ञान, डॉ. भोलानाथ तिवारी, पृ.209
3. अनुवाद भारती, सं. डॉ. राम गोपाल सिंह, अंक-14-15, पृ.39
4. अनुवाद बोध, सं. डॉ. गार्गी गुप्त, ले. डॉ. नारायण दत्त पालीवाल, पृ.180

जब देश छोटे-छोटे राज्यों और प्रांतों में बँटा हुआ था तो संस्कृत को परस्पर कार्य व्यवहार के लिए महत्त्वपूर्ण भाषा के रूप में अपनाया गया था । इन राज्य इकाइयों को तत्कालीन व्यवस्था के अंतर्गत राष्ट्र का नाम दिया जाता था और लगभग सभी राज्यों में राजभाषा के रूप में संस्कृत का प्रयोग होता था । मुस्लिम सत्ता के आने से राजभाषा के रूप में फारसी और अरबी के प्रचलन से संस्कृत भाषा पर से राजकीय संरक्षण हट गया ।[1]

राजकीय गतिविधियों से हटकर देखें तो 1000 ई. के बाद विद्यापति, सूर, बिहारी, तुलसी आदि ने संस्कृत साहित्य से छायानुवाद करके हिन्दी भाषा की नींव को अधिक मजबूत बनाया ।

डॉ. राम गोपाल सिंह के अनुसार संस्कृत के काव्यशास्त्रीय ग्रंथों के आधार पर हिन्दी में काव्यशास्त्रीय ग्रंथ लिखे जाने की एक सुदीर्घ परंपरा रही है ।[2]

16वीं सदी से लेकर 18वीं सदी के मध्य तक प्रमुख रूप से धार्मिक साहित्य, आयुर्विज्ञान, ज्योतिष, कोश, व्याकरण, नीति, कोकशास्त्र, गीता, महाभारत, रामायण, पुराण, भागवत, पंचतंत्र, हितोपदेश के अनुवादों की एक लंबी सूची डॉ. भोलानाथ तिवारी ने अपनी पुस्तक अनुवाद विज्ञान (पृ.209) में दी है । यह सूची निम्नानुसार है :

गीता : हरिवल्लभ, 1644 ई.; गीतावार्तिक (गद्यानुवाद), भगवानदास, 1699 ई.; गीता भाषा टीका (दोहों में अनुवाद तथा गद्य में टीका), आनंदराम, 1704 ई.; गीता भाषाज्ञान, हरिवल्लभ 1714 ई.; भगवद्‌गीता, काशिगिरि, 1734 ई.; भगवद्‌गीता भाषा टीका (पद्य में), मलूकदास लाहौरी, 1751 ई. भगवद्‌गीता टीका, मंजू मिश्र 1800 ई.; भगवद्‌गीता माला, जुगतानंद 1802 ई.; गीताभाषा (गद्यानुवाद), अंगदशास्त्री, 1850 ई.; भगवद्‌गीता (गद्यानुवाद), बडीलाल, 1850 ई.; भगवद्‌गीता भाषा, कृष्णमणि, 1868 ई.; अष्टावक्र गीता (पद्यानुवाद), अखंडानंद, 1836 ई. आदि ।

महाभारत : महाभारत, देवीदास, 1663 ई. विजय मुक्तावली (अंशानुवाद), छंदकवि, 1700 ई.; संग्रामसार (द्रोण पर्व का पद्यानुवाद); कुलपति मिश्र, 1727 ई. वनपर्व (पद्यानुवाद), गोकुलनाथ, 18वीं सदी का अंतिम चरण ।

भागवत : भागवत दशम स्कंध भाषा, नंददास, 1560 ई.; भागवत

---

1. अनुवाद बोध, (सं.) डॉ. गार्गी गुप्त, पृ.180
2. अनुवाद विज्ञान : स्वरूप और समस्याएँ, डॉ. रामगोपाल सिंह, पृ.248

(10वाँ स्कंध पूर्वार्द्ध), गोपीनाथ 1582 ई.; भागवत (11वाँ स्कंध), चतुरदास, 1595 ई.; भक्तिकल्पतरु (भागवत का संक्षिप्त भावानुवाद), पदुमन, 1882 ई.; भाषाभागवत (11वाँ स्कंध), कृपाराम, 1715 ई.; भागवत एकादश स्कंध (पद्यानुवाद), बालकृष्ण 1747 ई.; भागवत (संपूर्ण) रसखानि, 1750 ई.; भागवत दशम स्कंध, भीष्म, 1816 ई.; भागवत दशम स्कंध (ब्रजभाषा में पद्यानुवाद), भूपति 1820 ई.; भागवत (प्रथम अध्याय), भीष्म 1843 ई.; गोकर्ण महात्म्य (भागवत के छह अध्यायों का अनुवाद), मक्खनलाल, 1846 ई.; भागवत (गद्यानुवाद), अंगदशास्त्री, 1850 ई.; आनंदलहरी (10वां स्कंध, दोहों में), रतन 1854 ई. ।

पुराण : विष्णुपुराण, लखनराज, 1580 ई.; जैमिनी पुराण, परमदास 1582 ई.; जैमिनी अश्वमेघ (दोहा-चोपाई में मुक्तानुवाद), भगवानदास निरंजनी, 1698 ई.; शिवसागर (ब्रह्मवैवर्त पुराण का मुक्तानुवाद), दलेलसिंह, 1700 ई.; विष्णुपुराण, भिखारी 1840 ई.; लिंगपुराण भाषा दुर्गाप्रसाद 1874 ई. ।

सत्यनारायण कथा : सत्यनारायण कथा, गंगाधर शास्त्री, 1797 ई.; सत्यनारायण कथा (दोहों में), ईश्वरदास, 1800 ई.; सत्यनारायण व्रत कथा टीका, वासुदेव सनाढ्य, 1842 ई.; सत्यनारायण कथा (पद्यानुवाद), रामप्रसाद गूजर, 1751 ई.; सत्यनारायण व्रत कथा, गणेशदत्त 1883 ई. ।

पंचतंत्र : पंचतंत्र, देवीलाल, 1690 ई.; पंचतंत्र भाषा टीका, अमरसिंह, 1703 ई.; पंचतंत्र उल्था, कृष्ण भट्ट 1725 ई., पंचतंत्र भाषा, पोल्हावन, 1800 ई. ।

हितोपदेश : हितोपदेश, पदुमनदास 1681 ई.; मित्रमनोहर (पद्यानुवाद), वंशीधर 1717 ई.; हितोपदेश कथा (पद्यानुवाद), जयसिंहदास, 1725 ई.; राजनीति (पद्यानुवाद), छबिनाथ 1767 ई.; राजनीति (मित्रलाभ), लल्लू लाल कवि 1812 ई. ।

अन्य नीति ग्रंथ : नारदनीति (सभापर्व के एक अध्याय का हिन्दी रूपांतरण गद्य में), देवी दास व्यास, 1643 ई.; चाणक्य नीति (पद्यानुवाद), भवानीदास, 1680 ई.; विदुर नीति (उद्योगपर्व का पद्यानुवाद), गोपाल, 1690 ई.; राजनीति भाषा (चाणक्य नीति का पद्यानुवाद), कीर्तिसेन 1780 ई.; भर्तृहरि शतक, नैनचंद, 1872 ई.; चाणक्यनीति दर्पण (दोहा), श्री लाल, 1873 ई.; ।

वैद्यक : द्रव्य संग्रह भाषा, पुरुषोत्तम, 1627 ई.; गजशास्त्र, चेतनसिंह, 1680 ई.; माधव निदान भाषा, भगवान 1690 ई.; अंजन निदान (गद्य-पद्य), आनंद सिंह, 1700 ई.; औषधि संग्रह, बाबूराम पांडे 1745 ई.; शालिहोत्र (ब्रजभाषा, गद्य में अनुवाद), रिषिसुर 1806 ई.; यूनानी सार, शेख मुहम्मद, 1875 ई.; तिब्ब रत्नाकर, ठाकुर प्रसाद 1880 ई.; निघण्टु भाषा (पद्य), मदनलाल 1880 ई. ।

ज्योतिष : स्वरोदय भाषा टीका, लालचंद, 1696 ई.; ताजिसार भाषा, छाजूराम द्विवेदी, 1735 ई.; शीघ्रबोध टीका, गुलाबदास, 1745 ई.; लघुजातक, अखैराम, 1755 ई.; मुहूर्त दर्पण (पद्यानुवाद), चंद्रमणि, 1755 ई.; रमल शकुन विचार, फते 18वीं सदी; मुहूर्त संचय, वासुदेव सनाढ्य, 1842 ई.; नवल नवरत्न दर्पण भाषा टीका, दत्तराम 1855 ई.; लघुजातक टीकाराम 1860 ई.; रमल विचार, कोविद 1876 ई. ।

अन्य : उल्था करीमा का नीतिप्रकाश, बल्देव कवि, समय अज्ञात; अमरूक शतक भाषा, पुरूषोत्तम 1673 ई.; अमृत भाषा गीत गोविंद (गद्य), भगवान 1730 ई.; अध्यात्म रामायण, माधोदास 1731 ई.; अमरतिलक (अमरकोश), भिखारीदास, 1740 ई.; योग वशिष्ठ भाषा, छज्जू, 1780 ई.; रत्नपरीक्षा, रामचन्द्र 1790 ई.; याज्ञवल्क्य स्मृति भाषा गुरूप्रसाद, 1800 ई.; मनु धर्म सार (मनुस्मृति), शिवप्रसाद, 1850 ई.; दुर्गापाठ भाषा, अनन्य, 1850 ई.; व्रतार्क (व्रतों पर) महेश दत्त, समय अज्ञात; एकादशी महात्म्य टीका, वासुदेव 1842 ई.; वैराग्य शतक (राजस्थानी में) गुणचन्द 1870 ई. ।

संस्कृत में नीति काव्यों की भी विशाल परंपरा रही है जो भारतीय वाङ्मय का सक्षम प्रतिनिधित्व कर रही है । इस परंपरा के अनेक काव्यों का हिन्दी में अनुवाद भी रीतिकाल में शुरु हुआ । हिन्दी में नीतिकाव्यों की रचना करनेवाले कवियों को अनुवाद की दृष्टि से डॉ. विनीता ने दो वर्गों में विभक्त किया है : (1) संस्कृत नीति काव्यों से परोक्ष रूप से प्रभावित कवि और (2) संस्कृत नीतिकाव्यों से प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित कवि । डॉ. विनीता के अनुसार - परोक्षरूप से प्रभावित वर्ग में संत साहित्य की गणना की जा सकती है । संत साहित्य में जो परंपरागत शास्त्रोक्त नीतिकथन मिलते हैं वे उनके अनुवाद न होकर लोक परंपरा से प्राप्त कहे जा सकते हैं । संस्कृत के नीतिपरक श्लोक एवं सूक्तियाँ जनमानस में इतनी गहराई से प्रविष्ट हो गए थे कि

अपने प्रतिदिन के व्यवहार में इन श्लोकों, सूक्तियों को प्रयोग में लाया जाता था । संतों ने भी उसी रूप में संस्कृत के नीति श्लोकों को अपने शब्दों में अभिव्यक्ति प्रदान की । अतः उनके नीतिकथन संस्कृत से प्रभावित होते हुए भी अनूदित नहीं कहे जा सकते । जबकि दूसरे प्रकार के वर्ग में दो प्रकार के कवि आते हैं (1) जिन्होंने संस्कृत नीति काव्यों का पूर्णतः शब्दानुवाद किया तथा (2) वे कवि हैं जिन्होंने संस्कृत नीतिकाव्यों से प्रभावित एवं प्रेरित होकर स्वतंत्र नीतिकाव्यों की रचना की और संस्कृत नीति श्लोकों का अंशतः शब्दानुवाद या भावानुवाद किया ।

(1) संस्कृत नीतिकाव्यों के पूर्णतः अनुवादक - चाणक्य नीति, भर्तृहरि के शतकत्रय, हितोपदेश, पंचतंत्र, सिंहासन बत्तीसी आदि संस्कृत नीतिकाव्यों का मध्यकाल में पूर्णतः अनुवाद भी किया गया । जैन महाकवि बनारसीदास ने सोमप्रभ की 'सूक्ति मुक्तावली' का हिन्दी अनुवाद किया । जयसिंहदास ने हितोपदेश का अनुवाद 'हितोपदेश की कथा' नाम से किया जो अप्रकाशित है और हस्तलिखित खंडित प्रति नागरी प्रचारिणी, सभा, काशी के पुस्तकालय में संरक्षित है । नयनसिंह ने भर्तृहरि के 'शतकत्रयम्' का सवैया छंद में अनुवाद किया यह भी अप्रकाशित है । ब्रजनिधि ने भी भर्तृहरि के तीनों शतकों का अनुवाद 'नीतिमंजरी', 'श्रृंगारमंजरी' और 'वैराग्यमंजरी' नाम से किया जिनकी हस्तलिखित प्रतियाँ राजस्थान, वाराणसी के अनेक पुस्तकालयों में सुरक्षित हैं । विष्णुगिरि ने चाणक्य नीति का दोहों तथा सोरठों में अनुवाद किया यह भी अप्रकाशित है । इन अप्रकाशित अनूदित रचनाओं का उल्लेख डॉ. रामस्वरूपशास्त्री रसिकेष ने अपने शोध प्रबंध 'हिन्दी में नीतिकाव्य का विकास' में किया है ।

(2) संस्कृत नीतिकाव्यों का अंशतः अनुवाद - जिस प्रकार विशुद्ध नीतिकाव्य लिखने की परंपरा संस्कृत में रही उस परंपरा का अनुकरण हिन्दी नीति कवियों ने भी किया । संस्कृत में चाणक्य नीति, विदुर नीति, शुक्र नीति, भर्तृहरि का नीतिशतक, द्याद्विवेद की नीति मंजरी, सोमवेद का नीति वाक्यामृत इस प्रकार के सर्वश्रेष्ठ नीति काव्य हैं जो विशुद्ध रूप से नीति को ही केन्द्र में रखकर रचे गए । इन नीतिकाव्यों का हिन्दी कवियों ने गहन और विस्तृत अध्ययन किया और इन से प्रभावित होकर तुलसीदास, रहीमदास, गंगकवि, वृंद, गिरधर, दीनदयाल गिरि एवं बृजराज आदि नीतिकवियों ने

स्वतंत्र नीतिकाव्यों की चना की और अपने नीतिकाव्यों में स्वानुभव के साथ-साथ परंपरागत नीतिकथनों को भी अपनाया । ये कवि संस्कृत नीतिकाव्यों से इतने अधिक प्रभावित हुए कि उन्होंने अपने नीतिकाव्यों में संस्कृत नीति कथनों का कहीं पूर्णतः शब्दानुवाद, कहीं भावानुवाद तो कहीं छाया ग्रहण करके शब्दों में उसे अभिव्यक्त किया है ।[1]

काव्य के बाद साहित्य का दूसरा सक्षम पहलु है - नाटक । 'संस्कृत में रचित नाटकों का हिन्दी अनुवाद आदिकाल से ही दिखाई देता है । सबसे पहली अनूदित रचना 1544 ई. में की गई थी । यह रचना संस्कृत 'प्रबोध चन्द्रोदय' का संक्षिप्त हिन्दी अनुवाद है जो मल्ह कवि का किया हुआ है ।'[2]

कृष्ण मिश्र रचित 'प्रबोध चचन्द्रोयम्', कालिदास विरचित 'अभिज्ञान शाकुन्तलम्', 'मालविकाग्निमित्र', 'विक्रमोर्वशीय' भवभूति द्वारा रचित 'उत्तररामचरितम्', 'महावीरचरितम्' और 'मालती-माधवम्' भास कृत 'स्वप्नवासवदत्तम्', 'प्रतिज्ञायौगन्धरायणम्', 'कर्णमारम्', 'उरुभंगम', 'अविभारकम्', 'प्रतिमा', 'अभिषेकनाटकम्', 'मध्यमव्यायोगः', 'इतवाक्यम्', 'दूतघटोत्कच', 'पंचरांत्रम्', 'चारुदत्तम्' आदि विशाखादत विरचित 'मुद्राराक्षस', शूद्रक विरचित 'मृच्छकटिकम्' श्री हर्ष विरचित 'रत्नावली' धनंजयविजय और भट्ट नारायण कृत 'वेणीसंहार' आदि नाटकों के हिन्दी अनुवाद करने में हिन्दी साहित्यकारों ने अत्यधिक रूचि दिखाई है ।

हिन्दी साहित्य के आधुनिक काल में जब प्रेस की स्थापना हुई तब अनेक हिन्दी लेखकों ने संस्कृत नाटकों से प्रभावित होकर नाटकानुवाद किया। राजा लक्ष्मण सिंह ने 1863 ई. में महाकवि कालिदास की विश्वप्रसिद्ध कृति 'अभिज्ञान शाकुन्तलम्' का 'शकुन्तला नाटक' नाम से अनुवाद किया ।[3] भारतेन्दु हरिश्चंद्र ने 1868 ई. में श्री हर्ष कृत 'रत्नावली' का अनुवाद किया । 1872 ई. में उन्होंने कृष्ण मिश्र विरचित 'प्रबोध चन्द्रोदय' के तीसरे अंक का अनुवाद 'पाखंड विडम्बन' नाम से किया; 1873 ई. में कांचन कवि कृत 'व्यायोग' का अनुवाद 'धनंजय विजय' नाम से; 1875 ई. में राजशेखर कवि कृत सट्टक (प्राकृत में) का 'कर्पूर मंजरी' 1878 ई. में विशाखा दत्त विरचित 'मुद्राराक्षस' का हिन्दी अनुवाद किया ।[4] भारतेन्दु के पश्चात सत्यनारायण

1. अनुवाद पत्रिका, अंक-96-97, जुलाई-दिसंबर 1998, पृ.1,2,3
2. संस्कृत नाटकों के हिन्दी अनुवादक - डॉ. देवेन्द्रकुमार, पृ.97
3. हिन्दी साहित्य कोश भाग-2, पृ.32
4. अनुवाद पत्रिका, अंक-96-97, जुलाई-दिसंबर 1998, पृ.20

कविरत्न कृत 'मालती माधवम्' और 'उत्तर रामचरितम्' के अनुवाद महत्त्वपूर्ण नाटकानुवाद हैं । द्विवेदीयुग के मैथिलीशरण गुप्त ने भास के 'प्रतिमा', 'अभिषेक' और 'अविभारकम्' का अनुवाद इन्हीं नामों से किया है ।[1] भगवतशरण उपाध्याय ने भास कृत 'स्वप्नवासवदत्तम्' और 'प्रतिज्ञायौगन्धरायणम्' का इन्हीं नामों से अनुवाद किया है । हरदयालु सिंह ने भास कृत 'स्वप्नवासवदत्तम्', 'प्रतिज्ञायौगन्धरायणम्', 'इतवाक्यम्', 'कर्णभारम्', 'मध्यमव्यायोग' आदि के हिन्दी अनुवाद किए तो मोहन राकेश ने शूद्रक के 'मृच्छकटिकम' और कालिदास के 'अभिज्ञान शाकुन्तलम्' का अनुवाद किया है। रांगेय राघव ने 'मृच्छकटिकम' का अनुवाद किया, बलदेव शास्त्री ने भी भास के लगभग सभी नाटकों का हिन्दी अनुवाद किया है ।

उपर्युक्त प्राप्त विवरणों के आधार पर से कहा जा सकता है कि प्राचीन भारतीय साहित्य में अनूदित ग्रंथ नहीं मिलते । परंतु धीरे-धीरे अनुवाद की परंपरा शुरू होने लगी । संस्कृत की 'वाल्मीकि रामायण', 'मेघदूत', 'शाकुंतलम्' आदि अनेक रचनाओं की कुछ पंक्तियों या छंदों के छायानुवाद प्राकृत अपभ्रंश की कृतियों में मिलते हैं । अपभ्रंश की कुछ रचनाओं की कुछ पंक्तियों के छायानुवाद हिन्दी की पुरानी रचनाओं में भी मिल जाते हैं । 16वीं सदी में संस्कृत के अनेक काव्यशास्त्रीय ग्रंथों के हिन्दी अनुवाद होने शुरू हो गए थे । अनुवाद का आयाम विस्तृत होता गया और संस्कृत से हिन्दी में अनुवाद करने की परंपरा आधुनिक काल तक भी जारी है ।

1.1.2 अंग्रेजी साहित्य के हिन्दी अनुवाद की परंपरा :

अंग्रेजी शिक्षा के प्रसार के साथ-साथ 19वीं सदी के प्रारंभ से ही अंग्रेजी साहित्य भारत में आया । सन 1857 ई. में हंटर आयोग की सिफारिशों के अनुसार अंग्रेजी शिक्षा को प्रोत्साहन मिला । तत्कालीन सरकार ने विश्वविद्यालयों में अंग्रेजी को विशेष स्थान दिया । विभिन्न राज्यों में भी अंग्रेजी भाषा और साहित्य का पठन-पाठन बढ़ता गया ।[2]

डॉ. राम गोपाल सिंह के अनुसार अंग्रेजी शासन में शिक्षा एवं साहित्य के गौरवपूर्ण ग्रंथों को विशिष्ट स्थान दिए जाने तथा इनके अध्ययन-अध्यापन को विशिष्ट महत्त्व दिए जाने के परिणामस्वरूप अंग्रेजी के ग्रंथों के हिन्दी

---

1. अनुवाद पत्रिका, अंक-96-97, जुलाई-दिसंबर 1998, पृ.23
2. अनुवाद पत्रिका, अंक-96-97, जुलाई-दिसंबर 1998, डॉ. सुधेश का लेख अंग्रेजी काव्य के हिन्दी अनुवादक, पृ.29

अनुवाद की आवश्यकता 20वीं सदी के प्रथम दशक में बड़े जोरों से अनुभव की गई ।[1]

सन 1903 में 'सरस्वती' पत्रिका के संपादक आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने अपना संपादन कार्य सँभालते ही अंग्रेजी के उत्कृष्ट ग्रंथों का हिन्दी अनुवाद करने की ओर हिन्दी लेखकों का ध्यान खींचा और 'ग्रंथकारों से विनय' नामक कविता द्वारा हिन्दी लेखकों से हिन्दी अनुवाद करने का आग्रह किया :

"इंग्लिश का ग्रंथ समूह बहुत भारी है, अति विस्तृत जलधि समान देहधारी है । संस्कृत भी इसके लिए सौख्यकारी है, उसका भी ज्ञानागार हृदयहारी है । इन दोनों में से अर्थ रत्न ले लीजै हिन्दी के अर्पण उन्हें प्रेमयुक्त कीजै ।"[2]

'सरस्वती' का संपादन कार्य सँभालते ही महावीर प्रसाद द्विवेदी ने अंग्रेजी से हिन्दी अनुवाद का एक अभियान शुरू कर दिया । अनुवाद कार्य का महत्त्व प्रतिपादित करते हुए लेख समय-समय पर इस पत्रिका में प्रकाशित होते रहे तथा इस महत्त्वपूर्ण दिशा की ओर लगभग पंद्रह वर्ष तक दिशानिर्देश किया जाता रहा । यहाँ तक कि इस कार्य को लोककल्याण का कार्य माना जाने लगा । 'सरस्वती' पत्रिका के दिसंबर 1917 के अंक में प्रेमवल्लभ जोशी ने 'हिन्दी साहित्य की उन्नति के उपाय' नामक लेख में लिखा है : "अंग्रेजी साहित्य में संचित ज्ञान हमें हिन्दी के द्वारा सुलभ करा देना चाहिए । हमारे साधारण शिक्षित भाइयों के कल्याण का साधन इससे बढ़कर ओर कोई नहीं हो सकता ।"[3] द्विवेदी जी के व्यक्तिगत प्रयत्नों के फलस्वरूप 'सरस्वती' पत्रिका में अनेक अंग्रेजी कृतियों के हिन्दी अनुवाद प्रकाशित हुए ।

साहित्यिक अनुवाद का रूप भारतेन्दु युग में प्रारंभ हुआ । सन् 1877 में प्रारंभ हुआ । सन् 1877 में हिन्दी की उन्नति पर पद्य में एक महत्त्वपूर्ण भाषण देते हुए भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने भारतीयों से अनुरोध किया कि जिस प्रकार अंग्रजों ने अनेकानेक विधाओं और ज्ञान के ग्रंथ अपनी भाषाओं में

---

1. अनुवाद विज्ञान : स्वरूप और समस्याएँ, डॉ. राम गोपाल सिंह, पृ.250
2. 'सरस्वती' फरवरी 1905, आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी की कविता 'ग्रंथकारो से विनय'
3. 'सरस्वती', दिसंबर 1917, श्री प्रेमवल्लभ जोशी का लेख 'हिन्दी साहित्य की उन्नति के उपाय'

निर्मित तथा दूसरी भाषाओं में अनूदित कर अपनी उन्नति की, उसी प्रकार भारतवासियों को उनका अनुकरण करना चाहिए ।[1]

हिन्दी में प्रारंभ में अंग्रेजी की कुछ गिनी-चुनी कविताओं का ही अनुवाद हुआ । अंग्रेजी की फुटकर कविताओं का हिन्दी में अनुवाद सबसे पहले श्रीनिवास दास ने किए । श्री निवासदास के उपन्यास 'परीक्षा गुरु' (जिसे हिन्दी का पहला उपन्यास माना जाता है ।) में बायरन, शेक्सपियर और काउपर की कविताओं की पंक्तियाँ अनूदित रूप में सम्मिलित हैं ।[2] अंग्रेजी की फुटकर कविताओं के अनुवाद का कार्य धीरे-धीरे स्वतंत्र कृतियों के अनुवाद तक पहुँच गया । ऑलिवर गोल्ड स्मिथ के 'हरमिट' का हिन्दी में अनुवाद 'योगी' नाम से किया गया । डॉ. लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय के अनुसार यह अनुवाद 1876 में लक्ष्मीप्रसाद ने किया ।[3] जबकि डॉ. विश्वनाथ मिश्र के अनुसार इसका अनुवाद त्रिलोचन ने किया है ।[4] डॉ. सुधेरा के अनुसार 'हरमिट' के अनुवाद हिन्दी के दो कवियों ने किए । श्रीधर पाठक ने 'एकान्तवासी योगी' और लोचनप्रसाद पांडे ने 'योगी' के नाम से इसके हिन्दी अनुवाद किए ।[5] सन् 1884 में श्रीधर पाठक ने टॉमस ग्रे की कविता 'शेफ़र्ड एन्ड दि फ़िलोसोफ़र' को 'गडरिया और आलिम' नाम से प्रस्तुत किया। सन् 1886 में श्रीधर पाठक ने 'हरमिट' का 'एकान्तवासी योगी हिन्दी अनुवाद किया उसके साथ-साथ उन्होंने लाँग फ़ेलो के करुण काव्य 'इवंजलाइन' का अनुवाद किया । सन् 1889 में ऑलिवर गोल्ड स्मिथ के 'डेज़र्टेड विलेज़' का हिन्दी काव्यानुवाद श्रीधर पाठक ने 'ऊजड़ ग्राम' नाम से किया । सन् 1897 की नागरी प्रचारिणी पत्रिका में पोप कृत 'एन ऐसे ऑन क्रिटिसिज़्म' का 'समालोचनादर्श' नाम से ब्रजभाषा में श्री जगन्नाथ दास रत्नाकर द्वारा किया गया अनुवाद प्रकाशित हुआ था । 1901 में पंडित छंगामल चतुर्वेदी ने 'डेज़र्टेड विलेज' का काव्यानुवाद 'ऊजड़ ग्राम' नाम से प्रकाशित किया । 1903 में इन्होंने 'होरेशस' नामक अपनी अनूदित कृति प्रकाशित की ।[6]

---

1. हिन्दी वाक्य रचना पर अंग्रेजी का प्रभाव, डॉ. राम गोपाल सिंह, पृ.17
2. अनुवाद, अंक-96-97, जुलाई-दिसंबर 1998, डॉ. सुधेश का लेख 'अंग्रेजी काव्य के हिन्दी अनुवादक', पृ.30
3. डॉ. लक्ष्मीसागर वार्ष्णेव, आधुनिक हिन्दी साहित्य, पृ.334
4. डॉ. विश्वनाथ मिश्र, हिन्दी भाषा और साहित्य पर अंग्रेजी भाव, पृ.210
5. अनुवाद, अंक-96-97, जुलाई-दिसंबर 1998, डॉ. सुधेश का लेख 'अंग्रेजी काव्य के हिन्दी अनुवादक'
6. हिन्दी वाक्य रचना पर अंग्रेजी का प्रभाव, डॉ. राम गोपाल सिंह, पृ.17

सन् 1903 से 1908 के सरस्वती के अंकों में अनेक अंग्रेजी कविताओं के हिन्दी अनुवाद प्रकाशित हुए । श्री गोरी दत्त वाजपेयी ने 'आशीर्वाद' नाम से बायरन कृत 'फ़ेयर दि वेल' का 'तरुणी तू चल बसी' नाम से 'एन्ड आर्ट दाऊ डेड सो यंग एन्ड फ़ेयर' का तथा सर वॉल्टर स्कॉट कृत 'लव ऑफ कंट्री' का 'स्वदेश प्रीति' नाम से भावानुवाद प्रस्तुत किया । श्री जैनेन्द्र किशोर ने जेम्स टेलर की 'माय मदर' का अनुवाद 'मेरी मैया' नाम से किया । श्री लक्ष्मीनारायण ने लाँग फ़ेलो कृत 'साम ऑफ लाइफ़' का जीवन गीत नाम से अनुवाद किया । श्री काली शंकर व्यास ने शेक्सपियर की फ्रेंडशिप का अनुवाद 'मित्रता' नाम से किया । 1905 में श्री सनातन शर्मा सकलानी ने 'निद्रा' नामक कविता प्रकाशित की जिसका पूर्वार्द्ध कवि साउदे कृत 'स्लिप' कविता का भावार्थ है और उत्तरार्द्ध लेखक की अपनी कल्पना है । श्री रामशरण विजय सिंह ने 'पीस एट होम' और श्री जीतन सिंह ने 'दि कुक्कू' का अनुवाद किया । आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने 'अर्नेस्ट' जोंस की कविता 'पोइट एन्ड लिबर्टी' का हिन्दी अनुवाद 'कवि और स्वतंत्रता' नाम से किया ।[1]

सर एडविन आर्नल्ड द्वारा रचित 'लाइट ऑफ एशिया' का 'बुद्धचरित' नाम से सन् 1922 में आचार्य रामन्द्र शुक्ल ने हिन्दी अनुवाद किया जो मूल की अपेक्षा अधिक सराहा गया । सन् 1908 से 1938 तक अंग्रेजी से हिन्दी अनुवाद फ़िट्जेराल्ड की जगप्रसिद्ध रचना 'रुबाइयत उमर ख़ैयाम' के अनेक अनुवाद हुए । 1929 में मैथिलीशरण गुप्त ने, 1932 में पंडित केशवप्रसाद पाठक और बलदेव प्रसाद मिश्र ने 1935 में श्री हरिवंशराय बच्चन ने तथा 1938 में श्री रघुवशलाल गुप्त ने इस कृति के अनुवाद किए । 1935 में पंडित गिरिधर शर्मा 'नवरत्न' ने 'हरमिट' का हिन्दी काव्यानुवाद 'योगी' नाम से प्रकाशित किया । सन् 1938 में श्री रामनारायण मिश्र ने मिल्टन कृत 'कोमस' का हिन्दी पद्यानुवाद 'कामुक अथवा सतीत्व महिमा' के नाम से किया । 1956 में जॉन मिल्टन कृत 'सैम्सन एगोनिस्ट्स' का हिन्दी रुपान्तर 'विक्रांत सेम्सन' नाम से श्री बालकृष्ण राव ने किया । 1958 में श्री राजेन्द्र द्विवेदी ने 'शेक्सपियर सानेट' का हिन्दी अनुवाद किया । 1962 में श्री यतींद्रकुमार ने विलियम वर्ड्सवर्थ की कविताओं का अनुवाद किया जो 'महाकवि वर्ड्सवर्थ का काव्य लोक' में संकलित है । 1965 में

1. काव्यानुवाद : सिद्धांत और समस्याएँ, डॉ. नगीनचंद्र सहगल, पृ.29
2. अनुवाद पत्रिका, अप्रैल-जून 1999 में 'राम विनोद रे का लेख' हिन्दी में अनूदित बंगला साहित्य, पृ.50

डॉ. हरिवंशराय बच्चन ने विलियम बटलर ईट्स की प्रमुख कविताओं का अनुवाद। 'मरकत द्वीप का स्वर' नाम से किया।[1]

इस प्रकार स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक, वैज्ञानिक और तकनीकी आदि दृष्टि से अंग्रेजी आदि पाश्चात्य साहित्य का अनुवाद भारी मात्रा में हुआ। तत्पश्चात अंग्रेजी से हिन्दी अनुवाद की प्रवाह प्रचुरता देखने को मिलती है।

1.2.3 अन्य भाषाओं के हिन्दी अनुवाद की परंपरा :

संस्कृत, अंग्रेजी के अलावा अनेक भाषाओं से हिन्दी अनुवाद हुए जिनमें निम्नलिखित प्रमुख भारतीय भाषाओं से हिन्दी अनुवाद हुए :

बंगला भाषा से हिन्दी अनुवाद : भारतीय भाषाओं से हिन्दी में अनुवाद की दृष्टि से देखा जाए तो बंगला साहित्य का हिन्दी अनुवाद सबसे अधिक हुआ है।

प्राचीनकाल से, बंगला से हिन्दी और हिन्दी से बंगला के लोकभाषिक संबंधों और साहित्यिक अनुवाद के प्रमाण मिलते हैं। परंतु ये अनुवाद आधुनिक अनुवाद के रूप से अलग रूप धारण किए हुए थे। साधुओं सन्यासियों, 'घुंमतु बंगला' गायकों द्वारा यह अनुवाद अनायास ही होता था। एक भाषा के भजन-लोकगीत आदि दूसरी भाषा में बरबस भाषा गीत हो जाते थे। भाषान्तरित होने के साथ-साथ ये भावानुकूलित भी हो जाते थे। इस लोकानुवाद प्रक्रिया से हिन्दी की उपबोलियों से मैथिली, भोजपुरी एवं अवधी भाषा का विशेष संबंध रहा। नवाबों तथा अंग्रेजों के प्रारंभिक शासनकाल में बंगला-हिन्दी के परस्पर प्रभावीकरण की प्रक्रिया अनायास ही जारी रही। कई मुसलमान शायरों ने एक ही भाव वाली रचनाएँ बंगला, हिन्दुस्तानी, फ़ारसी आदि में साथ-साथ रचीं। टैगोर के बाद बंगाल के सुविख्यात कवि 'काज़ी नज़रूल इस्लाम' हैं जिन्होंने अपने अनेक गीतों में बंगला पंक्तियों के बीच-बीच में हिन्दुस्तानी पंक्तियाँ भी डाल दी हैं। इनके अनेक ऐसे गीत हैं जिन्हें उन्होंने हिन्दी और बंगला मिश्रित भाषा में लिखा। यथा :

ब्रोजे गोपी खेले होरी
बाजे आनंदो नवोधोनो प्रेमेर साथे[2]

---

1. काव्यानुवाद : सिद्धांत और समस्याएँ, डॉ. नगीनचंद्र सहगल, पृ.30

इसके बाद बंगला से हिन्दी अनुवाद भारत में मुद्रण एवं पत्रकारिता के प्रारंभ होने के समय से ही मिलते हैं । अभी तक साहित्यिक कृतियों के ही अनुवाद देखने में आए हैं । साहित्य से इतर विषयों तथा सामाजिक विज्ञानों, राजनीति विज्ञान आदि में बहुत ही कम अनुवाद हुए हैं । 1888 में माइकल मधुसूदन दत्त की 'क्या इसी को सभ्यता कहते हैं' और 'कृष्णकुमारी' कृति का हिन्दी अनुवाद बृजनाथ ने किया था । इसके अलावा 1889 में रामकृष्ण वर्मा ने माइकल मधुसूदन दत्त की 'कृष्णकुमारी' और 'वीर नारी' का हिन्दी अनुवाद किया था । स्वर्ण कुमारी देवी कृत 'दीप निर्माण' का अदित नारायणलाल वर्मा ने अनुवाद किया था । 20वीं सदी के प्रारंभ से स्वतंत्रता प्राप्ति तक बंगला की अनेक पुस्तकें हिन्दी में अनूदित हुईं जिनमें से निम्नलिखित अनुवाद लोकप्रिय हुए :

1918 में गिरीशचंद्र घोष कृत 'वैधन्य' का रामचन्द्र वर्मा द्वारा अनुवाद ।

1918 में स्वर्णकुमारी देवी कृत 'फूलों का घर' का रामचन्द्र वर्मा द्वारा अनुवाद ।

1920 में द्विजेन्द्रलाल राय कृत 'उस पार' का रूपनारायण पाण्डेय द्वारा अनुवाद ।

1920 में बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय कृत 'राजधारानी' का प्रताप नारायण मिश्र द्वारा अनुवाद ।

1926 में गिरीशचन्द्र घोष कृत 'वैधन्य' का रामचन्द्र वर्मा द्वारा पुनः अनुवाद ।

1927 में माइकल मधुसूदन दत्त कृत 'वीरांगना' का मैथिलीशरण गुप्त द्वारा अनुवाद ।

1927 में हरप्रसाद शास्त्री कृत 'राजकुमार कुणाल' का लक्ष्मीघर वाजपेयी द्वारा अनुवाद ।

1928 में निरूपमा देवी कृत 'विधाता का विधान' का रामचन्द्र वर्मा द्वारा अनुवाद ।

1931 में रवीन्द्रनाथ टैगोर कृत 'कलरव' का रामचन्द्र टंडन द्वारा अनुवाद ।

1940 में राखालदास बंद्योपाध्याय कृत 'शशांक' का रामचन्द्र शुक्ल द्वारा अनुवाद ।

1946 में राखालदास बंद्योपाध्याय कृत 'करूणा' का रामचन्द्र शुक्ल द्वारा अनुवाद ।

इसके अलावा धनेश्वर शास्त्री द्वारा अनूदित स्वर्णकुमारी देवी की रचना 'अधखिली कली' भी लोकप्रिय हुआ ।[1]

बंगला कवियों के हिन्दी अनुवाद ने 1951 से गति पकड़नी शुरू कर

---

1. अनुवाद, अप्रैल-जून 1999 में राम विनोद रे का लेख, हिन्दी में अनूदित बंगला साहित्य, पृ.51

दी थी और 1960 तक तो बंगाली लेखक हिन्दी पाठकों में अपना अच्छा खासा स्थान बना चुके थे । 1960 के बाद अभी तक बंगला कृतियों का हिन्दी में अनुवाद होता आ रहा है । शरत, रवीन्द्रनाथ, बिमल मित्र की अधिकांश कृतियों का मराठी, गुजराती एवं दक्षिणी भाषाओं में अनुवाद हिन्दी अनुवादों के आधार पर हुआ है ।[1]

अनेक हिन्दी साहित्यकारों ने बंगला से हिन्दी में अनुवाद किए जिनमें प्रभाकर माचवे, नागार्जुन, प्रयाग शुक्ल, विष्णु प्रभाकर, डॉ. माहेश्वर, हंसकुमार तिवारी आदि हैं । इनमें से हंसकुमार तिवारी ने बंगला से हिन्दी में सबसे अधिक अनुवाद किए हैं । हंसकुमार तिवारी द्वारा बंगला से हिन्दी में अनुदित साहित्य की प्रमुख रचनाएँ निम्नलिखित हैं :

1961 में रवीन्द्रनाथ टैगोर कृत गीतांजलि
1961 में हुमायूँ कबीर कृत बंगला काव्य की भूमिका
1960 में शरतचन्द्र कृत देवदास
1967 में समरेश बसु कृत गंगा
1969 में मनोज बसु कृत कैसे भूलूँ
1957 में ताराशंकर बंद्योपाध्याय कृत आरण्यक
1962 में प्रबोधकुमार सन्याल कृत हुस्नबानू
1965 में शंकर कृत योग वियोग
1976 में सत्यजीत रे कृत गंगटोक में घपला
1959 में प्रेमेन्द्र मित्र कृत कुहासा
1960 में बिमल मित्र कृत साहब बीबी गुलाम
1977 में बंकिमचंद्र कृत आनंद मट्ठ
1977 में प्रतापचंद्र कृत अजगर
1960 में प्रमथनाथ बिशि कृत बड़े केरी साहब का मुंशी
1985 में निमाई भट्टाचार्य कृत गोधुलिया
1979 में आशापूर्णा देवी कृत बकुल्कथा
1981 में लोकनाथ भट्टाचार्य कृत बाबूघाट की क्वाँरी मछलियाँ ।[2]

---

1. अनुवाद, अप्रैल-जून 1999 में राम विनोद रे का लेख, हिन्दी में अनूदित बंगला साहित्य, पृ.51
2. वही, पृ.53

हिन्दी में बंगला के कथा साहित्य का सबसे अधिक अनुवाद हुआ उसके बाद काव्य का और फिर नाटक का अनुवाद हुआ ।

रवीन्द्रनाथ टैगोर की लगभग सभी कविताओं का हिन्दी में अनुवाद हो चुका है । उनकी कई रचनाओं के तो कई-कई अनुवाद हुए है । केवल गीतांजलि के ही लगभग 20 से 22 अनुवाद हो चुके हैं । उत्तम श्रेणी का बंगला-हिन्दी काव्यानुवाद करने में मैथिलीशरण गुप्त, भारत भूषण अग्रवाल, निराला, जयंतकुमार, कंचन कुमार, हृदय आदि प्रमुख अनुवादक कहे जा सकते हैं । बंगला नाटकों का अनुवाद कम हुआ है । सर्वप्रथम अनूदित उल्लेखनीय नाटक रवीन्द्रनाथ टैगोर का है । उनके अधिकांश नाटकों का अनुवाद राजेश दीक्षित ने किया । अज्ञेय ने भी रवीन्द्र के चुने हुए नाटकों का अनुवाद किया। कथा, नाटक, काव्य आदि के अलावा अन्य विधाओं की बंगला कृतियों का अनुवाद हिन्दी में नगण्य रूप से हुआ है ।

बल्गारियन साहित्य से हिन्दी अनुवाद :

विदेशी संस्कृतियों के साथ भारत के सांस्कृतिक संबंधों के परिणाम से सांस्कृतिक लेन-देन भी शुरू हुई । 1970 के आसपास भारत तथा बल्गारिया के बीच बढ़ते हुए सांस्कृतिक संबंधों के परिणामस्वरूप भारत में बल्गारियन साहित्य के अध्ययन एवं अनुवाद की ओर रूचि बढ़ी । बल्गारिया में तो बहुत पहले ही टैगोर, गांधीजी, नेहरू आदि के साहित्य, रामायण, महाभारत आदि अनेक ग्रंथों के अनुवाद हो चुके थे । परंतु भारत में बल्गारियन साहित्य का अनुवाद बहुत बाद में प्रारंभ हुआ । डॉ. विमलेश कांति के अनुसार "हिन्दी में प्रथम बार किसी बल्गारियन कवि की रचनाओं के अनुवाद का प्रकाशन 1959 में डॉ. रामविलास शर्मा के द्वारा बल्गारिया के क्रांतिकारी कवि वप्सारोव की कविताओं के अनुवाद से होता है ।"[1]

इस ग्रंथ के प्रकशन के बाद फिर एक लंबा मौन अंतराल है जिसमें फुटकर रचनाओं के अनुवाद तो शायद हिन्दी की किसी पत्रिका या अन्य कहीं प्रकाशित हुए हों किन्तु 1978 से अचानक बल्गारियन साहित्य के हिन्दी अनुवाद जोरशोर से होने लगे । नई दिल्ली में बल्गारियन सांस्कृतिक सूचना केन्द्र की स्थापना होने से भारतीय लेखक बल्गारियन साहित्य के प्रति और

---

1. अनुवाद पत्रिका; जनवरी-मार्च, 1984 में डॉ. विमलेश कांति का लेख 'विदेशी भाषा और हिन्दी अनुवाद : समस्याएँ और संभावनाएँ' पृ.12

अधिक आकर्षित होने लगे । हिन्दी के अलावा अनेक भारतीय भाषाओं में भी अनुवाद होने लगे । सबसे अधिक अनुवाद हिन्दी में होने लगे थे, क्योंकि हिन्दी राष्ट्रभाषा भी थी साथ ही साथ विदेशियों की दृष्टि में हिन्दी अधिक महत्त्वपूर्ण भाषा थी ।

बल्गारिया और बल्गारियन साहित्य दोनों भारतीयों के लिए नए थे । बल्गारियन भाषा जाननेवाले ऐसे भारतीय भी गिने-चुने थे जो बल्गारियन भाषा तथा हिन्दी भाषा दोनों पर समान प्रभुत्व रखते हों और बल्गारियन साहित्य के अनुवाद के प्रति उनकी यत्किंचित रुचि हो । ऐसी स्थिति में मूल भाषा से अनुवाद की संभावना कम थी । अतः इस समय बल्गारियन का जो कुछ भी हिन्दी में अनुवाद हुआ वह अंग्रेजी के माध्यम से हुआ था ।

अंग्रेजी में अनूदित बल्गारियन कविताओं के संकलन और अंग्रेजी भाषा में सोफिया प्रेस से प्रकाशित बल्गारियन साहित्य की सहायता से कई बल्गारियन साहित्यकारों और कवियों की कृतियों के अनुवाद हुए । कई कवियों की एक ही रचना के कई-कई अनुवाद भी हुए । एलेन्कोव, प्सारोव, ख्रिस्तो ब्रोतेव, जागरोव, लिल्याना स्तेफेनोवा, लेवचेव आदि के काव्य संकलन हिन्दी में प्रकाशित हुए । इवान वाजव के सुप्रसिद्ध उपन्यास 'पोद इगोतो' का हिन्दी अनुवाद भी प्रकाशित हुआ । 'घंटाधर' नाम से बल्गारियन कहानियों का एक संकलन भी प्रकाशित हुआ जिसमें प्रथम बार एलिन पेलिन, वाजोव, योदनि योवकोव आदि लेखकों की कहानियाँ संकलित हैं । ये अनुवाद प्रायः अंग्रेजी से ही हुए थे । मूल बल्गारियन भाषा से हिन्दी में अनूदित ग्रंथ गिने चुने ही हैं । 1975 में 'मॉडर्न बल्गारियन पोएट्री' के नाम से राय व मैकग्रेगर हेस्टी ने अनुवाद किया जिसे सोफिया प्रेस बल्गारिया ने प्रकाशित किया । 1978 में ल्यबोमीर की रचना का 'मुर्गायुद्ध' नाम से सतीकुमार ने अनुवाद किया जिसे समकालीन प्रकाशन नई दिल्ली ने प्रकाशित किया ।

1979 में 'वर्षान्त' नाम से सतीकुमार ने ग्योर्गी जागरोव की रचना का हिन्दी अनुवाद किया था जिसे समकालीन प्रकाशन नई दिल्ली ने प्रकाशित किया था । 1980 में पीटर टेम्पेस्ट ने 'एंथोलोजी ऑफ बल्गारियन पोएट्री' का अनुवाद किया जिसे सोफिया प्रेस बल्गारिया ने प्रकाशित किया । 1981 में विमलेश कांति वर्मा और ध्रीरा वर्मा ने 'बल्गारिया का इतिहास' नाम से बल्गारिया के इतिहास पर प्रकाश डालते अनेक बल्गारियन लेखकों के संकलन

का हिन्दी में अनुवाद किया है । बल्गारियन राज्य की स्थापना के 1300 वें वर्ष के उपलक्ष्य में बल्गारिया के मूर्धन्य इतिहासकारों द्वारा सम्मिलित रूप से लिखे गए इतिहास का यह मूल बल्गारियन भाषा से हिन्दी में अनुवाद है जिसे राजपाल एन्ड सन्स दिल्ली ने प्रकाशित किया । इसके बाद मूल बल्गारियन से हिन्दी में अनूदित पुस्तक 'बल्गारिया की लोककथाएँ' हैं जिसका अनुवाद धीरा वर्मा ने किया है ।[1]

बल्गारियन भाषा से आज भी हिन्दी अनुवाद हो रहे हैं । जिससे हिन्दी को और नए आयाम प्राप्त हुए हैं और हो रहे हैं ।

1.3 अनुवाद की संकल्पना :

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है । अपना जंगलीपन छोड़कर जब वह समाज बनाकर रहने लगा तब उसे सबसे पहले अपने विचारों को अन्य तक पहुँचाने की आवश्यकता महसूस हुई । इस आवश्यकता की पूर्ति के लिए उसने सबसे पहले इंगित-इशारों का सहारा लिया । इन इंगित इशारों की ही सहायता से वह अपने विचारों को अन्य तक पहुँचाता था । इन्हीं इंगित-इशारों की मदद से वह अपने शत्रुओं, पशुओं आदि को डरा-धमकाकर रखता था । कभी-कभी इन इंगित-इशारों से विचारों का संपूर्ण संप्रेषण नहीं हो पाता था । इसलिए उसने अपनी आवाज का भी सहारा लेना शुरू किया और ये ही इंगित-इशारे और आवाज विकसित होकर भाषा की इकाई बने और भाषा का जन्म हुआ । मनुष्य का समाज बढ़ने लगा, विस्तृत होने लगा । अलग-अलग क्षेत्रों में मनुष्य बँटने लगा । इस परिस्थिति में क्षेत्रीय भाषाओं का जन्म और फिर विकास होने लगा । दो क्षेत्रों की सीमा पर रहनेवाले मनुष्य को दो भाषाओं का ज्ञान होने लगा और यहाँ से अनुवाद का जन्म हुआ ।

आज इस विश्व में तीन हजार से भी अधिक प्रमुख भाषाएँ हैं । प्राचीन काल में भी अनेक भाषाएँ अपना दैनिक जीवन व्यवहार चलाने के लिए सुदूर क्षेत्रों से आने वाले मनुष्य को अपनी भाषा से संपूर्ण रूप से अलग भाषा को समझने के लिए उससे ज्ञान प्राप्त करने के लिए या फिर अर्जित ज्ञान को अपने समाज में संप्रेषित करने के लिए उसे अनुवाद की ही आवश्यकता हुई होगी । इसी भाषा भेदकता के कारण आज भी अनुवाद अपना वर्चस्व कायम रखें हुए है ।

---

1. अनुवाद पत्रिका, जनवरी-मार्च, 1984 में डॉ. विमलेश कांति का लेख 'विदेशी भाषा और हिन्दी अनुवाद : समस्याएँ और संभावनाएँ' पृ.13

1.3.1 अनुवाद शब्द : व्युत्पत्ति और अर्थ :

विश्व के प्राचीनतम साहित्य में संस्कृत साहित्य की गणना होती है जिसमें वेद, पुराण, महाभारत, उपनिषद आदि की रचना हुई है । इस प्राचीन संस्कृत साहित्य में अनुवाद शब्द का प्रयोग तो प्रचुर मात्रा में हुआ है परंतु इस 'अनुवाद' का संदर्भ आज के अनुवाद (ट्रान्सलेशन) शब्द से कतई नहीं है ।

ऋग्वेद में 'अन्वेको वदति यद्दाति' (2. 13. 3) और 'रोचनादधि' (8. 1. 18.) है । 'अनु... वदति' अर्थात 'पीछे से कहता है' या 'दुहराता है' । 'रोचनादधि' पर सायण कहते हैं - 'अधिः पंचम्यर्थानुवादी' । अर्थात् 'अधिः' चमी के अर्थ को ही दुहरा रहा है । वैदिक संस्कृत के प्राचीनतम रूप में 'अनुवाद' के 'अनु' और 'वद' का प्रयोग पृथक रूप में प्राप्त होता है (अनुवदति) । इसके बाद 'अनु' और 'वद' का मिलाकर प्रयोग होने लगा ।[1]

'वद्' धातु में 'घञ्' प्रत्यय लगने से 'वाद' शब्द बनता है । इस वाद शब्द में 'अनु' उपसर्ग लगने से 'अनुवाद' शब्द की व्युत्पत्ति होती है । 'वद्' धातु का अर्थ - 'बोलना' या 'कहना' होता है और 'अनु' उपसर्ग का संदर्भ 'पीछे, बाद में', 'अनुवर्तिता' आदि के अर्थ में है । इस प्रकार 'अनुवाद' शब्द का अर्थ 'किसी के बाद कहना' या 'फिर से कहना' होता है ।

'शब्दार्थ चिंतामणि' कोश में अनुवाद का अर्थ 'प्राप्तस्य पुनः कथने' या 'ज्ञातार्थस्य प्रतिपादते' अर्थात् 'पहले कहे गए अर्थ को फिर से कहना' दिया गया है ।[2]

ब्राह्मण ग्रंथों में 'दुबारा कहना' या 'पुनःकथन' के अर्थ में अनुवाद शब्द का प्रयोग कई जगह देखने को मिलता है । ऐतरेय ब्राह्मण में - "यद्वाचि प्रोदितायाम अनुब्रूयाद् अन्यस्यैवैनम । उदितानुवादिनम् कुर्यात् (ऐतरेय ब्राह्ण 2.15) । बृहदारण्यक उपनिषद में 'अनुवदतिं' का प्रयोग दुहराने के अर्थ में आया है : "तद् एतद् एवैषा देवी वाग् अनुवदति स्तनयित्नुः द द द इति" (बृहदारण्यक; 5.2.3) । यास्क के निरुक्त में "कालानुवाद परीत्य" (निरुक्त 12.13) 'कहना' या 'ज्ञात को कहना' ही अनुवाद है । निरुक्त में ही अन्य जगह पर 'अनुवाद' का प्रयोग 'दुहराने' के अर्थ में हुआ है : "एतद् ब्राह्मणेन रूप संपन्न विधीयंत इत्युदितानुवादः स भवति" निरुक्त

1. अनुवाद विज्ञान : स्वरूप और समस्याएँ, डॉ. राम गोपाल सिंह, पृ.10
2. अनुवाद विज्ञान, डॉ. भोलानाथ तिवारी, पृ.9

(1.16) । पाणिनी की 'अष्टध्यायी' में भी अनुवाद शब्द का प्रयोग हुआ है : "अनुवाद चरणानाम्" (अष्टध्यायी; 2.3.4) । 'अनुवादे चरणानाम' में प्रयुक्त अनुवाद की व्याख्या भट्टोजि दीक्षित ने 'सिद्धस्य उपन्यासे' के रूप में की है जिसका अर्थ - 'ज्ञात बात को कहना' है । भट्टोजि पर वासुदेव दीक्षित की व्याख्या बाल मनोरमा में आता है - अवगतार्थस्य प्रतिपादने इत्यर्थः अर्थात् ज्ञात को कहना ही अनुवाद का अर्थ यहाँ अभिप्रेत है । पाणिनि के सूत्र 'अनुवादे चरणानाम्' पर महाभाष्यकार के कथन की टीका में कय्यट कहते हैं : "यदा प्रतिपत्ता प्रमाणांतरावगतमप्यर्थ काश्चातरार्थ प्रयोक्ता प्रतिपाद्यते तदानुवादी भवति ।" अर्थात् किसी और प्रमाण से विदित बात की हो, दूसरे कार्य के लिए किसी के द्वारा श्रोता से जब कहा जाता है, तब अनुवाद होता है । कशिका में इसी पर टीका की गई है - "प्रमाणान्तरावगतस्यार्थस्य शब्देन संकीर्तनमात्रमनुवादः (कशिका, 2.3.4) अर्थात् अन्य किसी प्रमाण से जानी हुई बात का शब्द के द्वारा कथन ही अनुवाद है ।"[1]

मीमांसा में वाक्य के आशय का दूसरे शब्दों में समर्थन के लिए प्रयुक्त कथन को 'अनुवाद' कहा गया है तथा इसके तीन प्रकार भूतार्थानुवाद, स्तुत्यर्थानुवाद तथा गुणानुवाद माने गए हैं । न्यायसूत्र में अनुवाद को वाक्यों का एक प्रकार माना गया है (विधि, अर्थवाद और अनुवाद) । 'विध्यर्थवादानुवादवचनविनियोगात' (न्यायसूत्र 2.1.62) । न्यायसूत्र में कहा गया है - विधि तथा विहित का पुनः कथन अनुवाद है विधि विहितस्यानुवचनमनुवाद (न्यायसूत्र; 2.1.65) । न्यायदर्शन में आता है कि अनुवाद और पुनरुक्ति में कोई भेद नहीं है, क्योंकि दोनों में शब्दों की आवृत्ति होती है - 'नानुवादपुनरुक्तयोर्विशेषः शब्दाभ्यासोपपन्ने' (न्यायदर्शन 2.1.66) । इससे ठीक विपरीत अर्थ में न्यायसूत्र के वात्स्यायन भाष्य (2.1.67) में कहा गया है कि 'अनुवाद' पुनरुक्ति नहीं है । 'पुनरुक्ति' निरर्थक होती है । परंतु अनुवाद सार्थक या प्रयोजनयुक्त पुनः कथन होता है । भर्तृहरि ने अनुवाद का अर्थ दुहराना या पुनःकथन बताया है । आवृत्तिरनुवादो वा (भर्तृहरि; 2.1.15) जैमिनीय न्यायमाला में आता है - ज्ञातस्य कथनमनुवादः (जैमिनीय न्यायमाला; 1.4.6) अर्थात् ज्ञात का कथन अनुवाद है । मनुस्मृति के

1. अनुवाद विज्ञान : स्वरूप और समस्याएँ, डॉ. राम गोपाल सिंह, पृ.10, 11

टीकाकार कुल्लूक भट्ट (4.124) कहते हैं - सामगानश्रुतौ ऋग्यजुषोरनध्याय उक्तस्तस्यायमनुवादः अर्थात् पुनः कथन ही अनुवाद है ।[1]

इस तरह संस्कृत साहित्य में 'अनुवाद' शब्द का प्रयोग बाद में कहना, फिर से कहना, दुहराना, ज्ञात को कहना, समर्थन के लिए प्रयुक्त कथन, आवृत्ति, सार्थक आवृत्ति, विधि या विहित का पुनःकथन, पुनरुक्ति आदि अनेक अर्थों में हुआ है । लेकिन स्रोतभाषा और लक्ष्यभाषा के संदर्भ में यह 'पुनःकथन' अनुवाद के आज के अर्थ को छूता है ।[2]

आज के संदर्भ में 'अनुवाद' शब्द की सीमाएँ भले ही विस्तृत हुई हों तथा उसने अपना दायरा भले ही विस्तृत किया हो लेकिन हजारों साल पहले संस्कृत साहित्य में प्रयोग किए जानेवाले शब्द 'अनुवाद' की अवधारणा वर्तमान युग में भी 'पुनःकथन' के संदर्भ में अनुवाद शब्द पर बिलकुल ठीक बैठती है। अतः प्राचीन संस्कृत साहित्य के अनेकों ग्रंथों में 'अनुवाद' के सूत्र बिखरे पड़े हैं । साथ ही आधुनिक अर्थ में संस्कृत के 'अनुवाद' शब्द में अर्थ विकास भी हुआ है ।[3]

अनुवाद के प्रति शब्द के रूप में अंग्रेजी में 'Translation' शब्द है । 'Translation' शब्द मूलतः लैटिन भाषा का शब्द है जो दो भिन्न शब्दों से बना है : 'Trans' और 'Lation' । 'Trans' का अर्थ है - 'पार' और 'Lation' का अर्थ है - 'ले जाना' या 'नयन' । अतः 'Translation' शब्द का अर्थ हुआ - 'पार ले जाना' । वेवस्टर्स थर्ड न्यू इंटरनेशनल डिक्शनरी में का अर्थ दिया है -

प्राचीनकाल में बिशप के स्थानांतरण और जीवित अवस्था में स्वर्गांतरण करने के अर्थ में भी 'Translation' शब्द का प्रयोग होता था । 'Translation' शब्द का एक अर्थ 'परिवर्तन' भी था । शेक्सपियर के 'Mid summer night's dream' नाटक, में क्विंस, बॉटम से कहता है - "Bless the Bottom : bless thee, thou art translated". इसी भाव को स्नाउट ने व्यक्त किया है - "O Bottom thou art changed," बॉटम के कंधों पर जब मनुष्य के सिर की जगह गधे का सिर लग जाता है तो उसका रूप परिवर्तित

1. अनुवाद विज्ञान, डॉ. भोलानाथ तिवारी, पृ.11
2. अनुवाद भारती अंक-6,7 जुलाई-दिसंबर 1996 में डॉ. राम गोपाल सिंह का लेख 'अनुवाद का पारिभाषिक परिप्रेक्ष्य' पृ.7
3. अनुवाद विज्ञान : स्वरूप और समस्याएँ, डॉ. राम गोपाल सिंह, पृ.12

हो जाता है । इसके लिए भी Translation शब्द का प्रयोग हुआ है । अंग्रेजी में 'Translation' शब्द का प्रयोग क्रियान्वयन या अर्थ परिवर्तन के अर्थ में भी मिलता है - "He did not translated his ideas into action." अर्थात् उसने अपने विचार कार्यरूप में परिणत नहीं किए । इस प्रकार 'Translation' शब्द का प्रयोग अंग्रेजी में आज के आधुनिक अर्थ से काफी दूर था ।[1]

1.3.2 अनुवाद की परिभाषा :

अनुवाद की जड़ें प्राचीनता की दृष्टि से काफ़ी गहरी हैं । प्राचीनतम संस्कृत साहित्य में 'अनुवाद' शब्द का उपयोग ऋग्वेद काल से चला आया है । परंतु वर्तमान संदर्भ में अनुवाद की प्रक्रिया अति जटिल है साथ ही इसे परिभाषित करना उससे भी अधिक कठिन है । कई भाषावैज्ञानिकों, अनुवादकों, मनीषियों ने इसे परिभाषित करने की कोशिश भी की है । पश्चिमी विद्वानों द्वारा की गई परिभाषाएँ :

एन्सायक्लोपीडिया ब्रिटेनिका भाग-10 के अनुसार - एक भाषा की प्रतीक व्यवस्था के स्थान पर दूसरी भाषा की प्रतीक व्यवस्था को रखना ही अनुवाद है ।

सेंट जेरोम के अनुसार - एक भाषा में व्यक्त भावों को दूसरी भाषा के भावों में व्यक्त करना अनुवाद है ।

नाइडा के अनुसार - स्रोत भाषा के संदेश को पहले अर्थ और फिर शैली के धरातल पर लक्ष्य भाषा में निकटतम, स्वाभाविक तथा तुल्यार्थक उपादान करना अनुवाद है ।

जे. सी. केटफॉर्ड के अनुसार एक भाषा की पाठ्यसामग्री को दूसरी भाषा की समानार्थक पाठ्य सामग्री से प्रतिस्थापित करना अनुवाद कहलाता है ।

डॉस्टर्ट के अनुसार अनुवाद अनुप्रयुक्त भाषाविज्ञान की वह शाखा है जिसका संबंध प्रतीकों के एक सुनिश्चित समुच्चय से दूसरे समुच्चय में अर्थ के अंतरण से है ।

हम्बोल्ट का मानना है कि असमाधेय का समाधान ही अनुवाद है ।

हेलिडे का कहना है कि अनुवाद एक संबंध है जो दो या दो से अधिक पाठों के बीच होता है । ये पाठ समान स्थिति में समान प्रकार्य

1. अनुवाद भारती अंक-6,7 जुलाई-दिसंबर 1996 में डॉ. राम गोपाल सिंह का लेख 'अनुवाद का पारिभाषिक परिप्रेक्ष्य' पृ.9

संपादित करते हैं । दोनों पाठों का संदर्भ समान होता है और उनसे व्यंजित होनेवाला संदेश भी समान होता है ।

कूपर के अनुसार अनुवाद का सार तत्त्वनिष्ठ है और यही निष्ठा अनुवाद शब्द में निहित है ।

न्युमार्क का मानना है कि अनुवाद एक शिल्प है जिसमें एक भाषा में लिखित संदेश के स्थान पर दूसरी भाषा सी संदेश को प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया जाता है ।

ए. एच. स्मिथ के अनुसार अनुवाद का आशय अर्थ को यथा संभव बनाए रखते हुए अन्य भाषा के अंतरग से है । डॉ. जॉन्सन का मन्तव्य है कि अनुवाद का तात्पर्य है अर्थ को बनाए हुए अन्य भाषा में अंतरग करना ।[1]

मैथ्यु आर्नल्ड के विचारानुसार अनुवाद ऐसा होना चाहिए कि उसका वही प्रभाव पड़े जो मूल का श्रोता पर पड़ा होगा । हार्टमन तथा स्टार्क का कहना है कि एक भाषा या भाषा-भेद से दूसरी भाषा या भाषा-भेद में प्रतिपाद्य को स्थानांतरित करने की प्रक्रिया या उसके परिणाम को अनुवाद कहते हैं ।

फॉरेस्टन का मानना है कि अनुवाद का तात्पर्य एक भाषा की पाठ्यसामग्री के कथ्य को दूसरी भाषा की पाठ्यसामग्री में यह जानते हुए अंतरित करने से है कि कथ्य को कथन से पृथक करना सदा असंभव होता है ।

रेनोटो पोगिआलो ने अनुवाद को एक व्याख्यात्मक कला माना है । चार्ल्स एस. टेरी का मानना है कि एक भाषा से दूसरी भाषा के अनुवाद में विचार, भाषा, संरचना और लोगों की आदतें निर्णायक भूमिका अदा करती हैं ।

एफ. गुथर ने अनुवाद को अर्थविज्ञान से जोड़ा है । एक इतालवी कहावत है - अनुवादक वंचक होते हैं । अनुवाद के संदर्भ में एक और इतालवी उक्ति प्रचलित है - निष्ठायुक्त कुरूपता अच्छी है, निष्ठारहित सुंदरता नहीं ।

मे का मानना है कि अनुवाद जैसी कोई चीज ही नहीं है ।

सिडनी मानते हैं कि विचार अनूदित हो सकते हैं लेकिन शब्द और उनकी अर्थछायाएँ अनूदित नहीं हो सकती ।[2]

सेपिर ने माना है कि एक सभ्यता के एक प्रतिनिधित्व की दृष्टि से दो भाषाएँ समान नहीं हो सकती हैं । क्योंकि दो सभ्यताएँ जिन समाजों में जीती हैं उनके अपने-अपने संसार हैं । इस प्रकार स्पष्ट है कि अनुवाद में मात्र

---

1. अनुवाद विज्ञान : स्वरूप और समस्याएँ, डॉ. राम गोपाल सिंह, पृ.16-17
2. वही, पृ.18

भाषिक परिवर्तन नहीं होता, प्रत्युत उसमें सभ्यता का रूपान्तरण होना चाहिए । रूपान्तरण निकटतम ही संभव है । थ्योडोर सेबरी का कहना है कि अनुवाद प्रायः उतना ही प्राचीन है जितना मूल लेखन और उसका इतिहास भी उतना ही भव्य और जटिल है जितना साहित्य की किसी दूसरी शाखा का ।[1]

पाश्चात्य विद्वानों की तरह भारतीय विद्वानों ने भी अनुवाद के संदर्भ में काफी चिंतन-मनन किया है । रवीन्द्रनाथ टैगोर के अनुसार - अनुवाद पूर्ण संतोष नहीं देता है । खुशवंत सिंह का मानना है कि "हर एक कृति अनुवाद योग्य है परंतु हर कृति का अच्छा अनुवाद नहीं किया जा सकता ।"

पट्टनायक के विचारानुसार - "अनुवाद वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा सार्थक अनुभव को एक भाषा समुदाय से दूसरी भाषा के समुदाय में संप्रेषित किया जाता है ।

श्रीपाद जोशी रघुवंश का कहना है - "अनुवाद एक भाषा के विचारो का दूसरी भाषा में स्थानांतरित करना मात्र नहीं है एक अच्छा अनुवाद सदैव मूल लेखन के समकक्ष होता है । इसके लिए अनुवादक को दोनों भाषाओं पर अधिकार ही नहीं वरन् अनुवाद तकनीक में विशेष रूप से प्रशिक्षित होना चाहिए ।"[2]

डॉ. रवीन्द्रनाथ श्रीवास्तव के अनुसार "एक भाषा (स्रोत भाषा) की पाठसामग्री में अंतर्निहित तथ्य का समतुल्यता[अ] के सिद्धान्त के आधार पर दूसरी भाषा (लक्ष्य भाषा) में संगठनात्मक रूपान्तरण[ब] अथवा सर्जनात्मक पुनर्गठन को ही अनुवाद कहा जाता है ।"[3]

डॉ. भोलानाथ तिवारी का मंतव्य है - "एक भाषा में व्यक्त विचारों को यथासंभव समान और सहज अभिव्यक्ति द्वारा दूसरी भाषा में व्यक्त करने का प्रयत्न अनुवाद है ।" उन्होंने अनुवाद की परिभाषा देते हुए यह भी लिखा है कि "अनुवाद कथनतः और कथ्यतः" निकटतम प्रतिप्रतीकन प्रक्रिया है ।[4]

(अ) अनुवाद की प्रक्रिया में कथ्य की समतुल्यता का सिद्धान्त भाषिक (लक्ष्य भाषा) इकाइयों की समतुल्यता है जिसमें अनूदित पाठ की बोधगम्यता और संप्रेषणीयता भी शामिल होनी चाहिए । (डॉ. रवीन्द्रनाथ श्रीवास्तव)

(ब) संगठनात्मक रुपान्तरण का अर्थ 'यांत्रिक रूपान्तरण के साथ-साथ लक्ष्यभाषा की सामग्री की बोधगम्यता और संप्रेषणीयता का होना है । (डॉ. रवीन्द्रनाथ श्रीवास्तव)

1. अनुवाद कला : सिद्धांत और प्रयोग, डॉ. कैलाशचंद्र भाटिया, पृ.3-4
2. अनुवाद भारती अंक-6,7 जुलाई-दिसंबर 1996 में डॉ. राम गोपाल सिंह का लेख 'अनुवाद का पारिभाषिक परिप्रेक्ष्य' पृ.15
3. अनुवाद कला : सिद्धांत और प्रयोग, डॉ. कैलाशचंद्र भाटिया, पृ.3
4. अनुवाद विज्ञान, डॉ. भोलानाथ तिवारी, पृ.15,17

डॉ. सुरेशकुमार के अनुसार "एक भाषा के विशिष्ट भाषा भेद के विशिष्ट पाठ को दूसरी भाषा में इस तरह प्रस्तुत करना अनुवाद है कि जिसमें वह मूल के भाषिक अर्थ, प्रयोग के वैशिष्ट्य से निष्पन्न अर्थ प्रयुक्ति और शैली की विशेषता, विषयवस्तु तथा संबद्ध सांस्कृतिक वैशिष्ट्य को यथासंभव संरक्षित रखते हुए दूसरी भाषा के पाठक को स्वाभाविक रूप से ग्राह्य प्रतीत हो।"[1]

डॉ. सत्यदेव मिश्र और डॉ. रामाश्रय सविता के अनुसार "अनुवाद स्रोत भाषा के शब्दार्थ, उसके पाठ तथा अभिव्यंजना और अभिव्यक्ति की दृष्टि से लक्ष्य भाषा में सहज समानकों द्वारा भाषान्तरण का उपक्रम है।"[2]

डॉ. कैलाशचन्द्र भाटिया के अनुसार - "अनुवाद वह भाषायी प्रक्रिया है जिसके मूल में एक भाषिक संरचना या अभिव्यक्ति का दूसरी भाषिक संरचना या अभिव्यक्ति में रूपान्तरण होता है।" उन्होंने इसे और अधिक स्पष्ट करते हुए कहा है कि - "एक भाषा में कही गई बात को दूसरी भाषा में ज्यों का त्यों कहना अनुवाद है।"[3]

डॉ. एन.ई. विश्वनाथ अय्यर का अनुवाद के संदर्भ में कहना है कि - "शब्दशः अनुवाद से अनुवाद को सबसे अधिक खतरा है। इसमें अक्सर शब्द का प्रतिशब्द रख दिया जाता है। लेकिन मतलब कुछ नहीं निकलता। जिस प्रकार हड्डियों का गठन ही मनुष्य नहीं है उसी प्रकार शब्दों का अनुवाद भी अनुवाद नहीं है।" मोरेश्वर दिनकर पराडकर के अनुसार "अनुवाद वास्तव में वह शीशा है जिसमें मूलकृति का हू-ब-हू प्रतिबिम्ब प्रस्तुत होना जरूरी है। सफल अनुवाद तो वही है जो अनुवाद जैसा मालूम न हो।" डॉ. रीतारानी पालीवाल के अनुसार "स्रोतभाषा में व्यक्त प्रतीक व्यवस्था को लक्ष्यभाषा की सहज प्रतीक व्यवस्था में रूपान्तरित करने का कार्य अनुवाद है।" अनुवाद को समझाते हुए उन्होंने कहा है कि - "अनुवाद एक भाषा के भाव एवं विचारगत प्रतीकों का अन्य भाषा के भाव एवं विचारपरक प्रतीकों में प्रतिस्थापन है।" डॉ. अवधेश मोहन गुप्त के

---

1. अनुवाद विज्ञान : स्वरूप और समस्याएँ, डॉ. राम गोपाल सिंह, पृ.20
2. अनुवाद अवधारणा और आयाम, डॉ. सत्येन्द्र मिश्र और डॉ. रामाश्रय सविता, पृ.6,7
3. अनुवाद कला : सिद्धांत और प्रयोग, डॉ. कैलाशचंद्र भाटिया, पृ.1,3

अनुसार "अनुवाद स्रोत भाषा के पाठ के कथन और कथ्य की लक्ष्य भाषा में सहज एवं समतुल्य अभिव्यक्ति है।" डॉ. हरिमोहन का मानना है कि "अनुवाद एक भाषा की सामग्री को दूसरी भिन्न सांस्कृतिक परिवेश वाली भाषा में रूपान्तरित करने की ऐसी प्रक्रिया है, जिसमें अधिकाधिक समतुल्यता की चेष्टा की जाती है।" डॉ. राम गोपाल सिंह के अनुसार "एक भाषा में व्यक्त विचारों को दूसरी भाषा में व्यक्त करना ही अनुवाद है।"[1]

1.3.3 अनुवाद प्रक्रिया और प्रकार :

अनुवाद एक भाषा में व्यक्त विचारों को दूसरी भाषा में पूर्णतः संप्रेषित करना है। एक भाषा की सामग्री को दूसरी भाषा की सामग्री में में उतारने की प्रक्रिया-अनुवाद प्रक्रिया है। अर्थात् 'अनुवाद कार्य आरंभ से लेकर 'अनुवाद सम्पन्न' तक की सारी गतिविधियाँ अनुवाद प्रक्रिया कहलाती है। विभिन्न भाषावैज्ञानिकों आदि ने अनुवाद की प्रक्रिया को वैज्ञानिक तौर से अलग-अलग सोपानों में बाँटा है।

नाइडा तथा अन्य पाश्चात्य अनुवाद चिंतकों ने अनुवाद प्रक्रिया को तीन सोपानों (1. पाठ विश्लेषण, 2. अंतरण और 3. पुनर्गठन) में बाँटा है तो कुछ रूसी विद्वानों ने अनुवाद प्रक्रिया के चार चरण (1. पाठ-पठन या पाठ-ग्रहण, 2. विश्लेषण 3. अंतरण और 4. संयोजन) मानें हैं। डॉ. रवीन्द्रनाथ श्रीवास्तव और डॉ. कृष्णकुमार गोस्वामी ने अनुवाद प्रक्रिया को तीन मुख्य भागों (1. मूल पाठ का अर्थग्रहण 2. अर्थान्तरण और 3. पुनर्गठन तथा अनूदित पाठ की संप्रेषणीयता की जाँच) में बाँटा है। डॉ. जी. गोपीनाथन ने अनुवाद - प्रक्रिया के दो सोपान (1. मूल पाठ्यसामग्री का विश्लेषण तथा 2. समुचित समतुल्यता का निर्णय) माने हैं। डॉ. सत्यदेव मिश्र तथा डॉ. रामाश्रय सविता का संयुक्त रूप से मानना है कि अनुवाद प्रक्रिया के चार (1. अर्थ सन्धान, 2. पाठ विश्लेषण, 3. अंतरण और समायोजन एवं 4. परिष्कार और पुनर्गठन) चरण हैं।[2]

भोलानाथ तिवारी ने अनुवाद प्रक्रिया को पाँच सोपानों में बाँटा है यथा : 1. पाठ-पठन, 2. पाठ विश्लेषण, 3. भाषांतरण, 4. समायोजन और 5. मूल से तुलना।[3]

---

1. अनुवाद विज्ञान : स्वरूप और समस्याएँ, डॉ. राम गोपाल सिंह, पृ.20, 21
2. अनुवाद अवधारणा और आयाम, डॉ. सत्येन्द्र मिश्र और डॉ. रामाश्रय सविता, पृ.89, 90
3. अनुवाद विज्ञान, डॉ. भोलानाथ तिवारी, पृ.103,104

डॉ. राम गोपाल सिंह ने अनुवाद प्रक्रिया को निम्नलिखित चार सोपानों में रखा है :

1. **पाठक की भूमिका और अर्थग्रहण :** अनुवादक स्रोतभाषा से अनुवाद करते समय सर्वप्रथम पाठक की भूमिका निभाता है और स्रोत भाषा सामग्री का अर्थग्रहण करता है ।
2. **द्विभाषिक की भूमिका और अर्थान्तरण :** अनुवाद द्वारा स्रोतभाषा सामग्री के पठन और उनके अर्थग्रहण के उपरांत वह द्विभाषिक की भूमिका निभाते हुए अर्थान्तरण करता है ।
3. **रचयिता की भूमिका और अर्थ संप्रेषण :** अर्थान्तरण के बाद अनुवादक स्रोत भाषा सामग्री के स्थान पर लक्ष्य भाषा की समतुल्य सामग्री में अनुवाद करता है तथा अर्थ संप्रेषण करता है । इस सोपान में अनुवादक रचयिता की भूमिका का भी निर्वाह करता है ।
4. अनुवाद प्रक्रिया का अंतिम चरण समतुल्यता है । अनुवादक तीसरे सोपान से गुजरने के उपरान्त स्रोत भाषा से लक्ष्य भाषा में किए गए अनुवाद के समतुल्य शब्दों, पदों, पदबंधों, उपवाक्यों, वाक्यों, वाक्यक्रम, अर्थ अन्विति आदि सभी पहलुओं को ध्यान में रखकर स्रोत भाषा सामग्री के स्थान पर लक्ष्यभाषा सामग्री की समतुल्यता करता है तथा त्रुटिपूर्ण स्थलों का वह इस सोपान में पता लगाता है तथा लक्ष्यभाषा के जो प्रतीक स्रोत भाषा के प्रतीक के अर्थ की समान अभिव्यक्ति नहीं देते, उनके स्थान पर समतुल्य प्रतीकों को खोजकर अनुवाद में स्थान देता है ।

उपरोक्त विद्वानों के मतों से एक बात अवश्य स्पष्ट होती है कि अनुवाद वास्तव में एक जटिल प्रक्रिया हैं जो विभिन्न सोपानों से गुजरती है । अतः हम कह सकते हैं कि 'अनुवाद कार्यारंभ' से लेकर 'अनुवाद कार्य सम्पन्न' तक की प्रक्रिया निम्नलिखित सोपानों से गुजरती है ।

1. **पाठ, पठन और अर्थग्रहण :** अनुवादक अनुवाद करते समय सबसे पहले स्रोत भाषा सामग्री को पठन करता है और उसका अर्थ समझता है ।
2. **अर्थान्तरण :** अनुवादक स्रोत भाषा सामग्री का अर्थ समझ कर उसका लक्ष्य भाषा में समतुल्य अर्थसंप्रेषण करता है ।
3. **पुनर्गठन :** अर्थ का संप्रेषण मूल के अनुरूप हुआ है या नहीं इसका अनुवादक स्रोत भाषा और लक्ष्य के संदर्भ में शब्दों के अर्थ और वाक्य रचना के स्तर पर मूल विषयवस्तु के अनुरूप पुनर्गठन का कार्य करता है ।
4. **पुनरीक्षण :** पुनर्गठन के बाद अनुवादक लक्ष्य भाषा की अनूदित सामग्री को पढ़ता है और लक्ष्य भाषा की प्रकृति, लक्ष्य भाषा में

उपलब्ध प्रतीकों, लक्ष्य भाषा प्रदेश की संस्कृति, लक्ष्य भाषा प्रदेश के पाठक आदि को ध्यान में रखकर लक्ष्य भाषा में उपलब्ध हुई स्रोत भाषा की पुनर्गठित सामग्री की समग्रता से जाँच करता है । पुनरीक्षण का यह सोपान अनुवाद को आदर्श अनुवाद की ओर ले जाने का प्रयत्न है ।

अनुवाद के प्रकार :

अनुवाद का क्षेत्र बहुत ही विशाल है । अनुवाद का मूल रूप यदि देखा जाए तो वह मौखिक ही रूप है । प्राचीन काल में जब भाषा ने अपना लिखित रूप भी नहीं लिया था तब अनुवाद मौखिक रूप में ही व्याप्त था । आज भी हम देखें तो लिखित रूप के बजाय मौखिक रूप ही अधिक छाया हुआ है । प्रत्येक व्यक्ति किसी भी क्षण किसी भी व्यक्ति से बात करता है तो सबसे पहले वह अपने मन में मातृभाषा में ही बात करता है और बाद में वह फिर उस 'मानसिक भाषा'[अ] का अनुवाद करके ही वार्तालाप करता है, जो मौखिक अनुवाद के रूप में है । अनुवाद की विशालता के कारण अनेक विद्वानों ने इसके अनेक प्रकार बताए हैं । डॉ. भोलानाथ तिवारी के अनुसार अनुवाद के चार प्रकार हैं :

1. गद्यत्व-पद्यत्व के आधार पर अनुवाद
2. साहित्यिक विधा के आधार पर अनुवाद
3. विषय के आधार पर अनुवाद और
4. अनुवाद की प्रकृति के आधार पर अनुवाद ।[1]

डॉ. कैलाशचन्द्र भाटिया ने भाषाविद् नायडा के अनुसार अनुवाद के तीन स्वरूपों का विवेचन किया है । 1. शाब्दिक अनुवाद 2. भावानुवाद और 3. पर्याय के आधार पर अनुवाद ।[2]

डॉ. एन. ई. विश्वनाथ अय्यर के अनुसार अनुवाद के प्रकार के तीन आधार निर्धारित किए जा सकते हैं : 1. माध्यम 2. प्रक्रिया और 3. पाठ के आधार पर । माध्यम के आधार पर अनुवाद के तीन भेद हो सकते हैं ।

(अ) प्रतीक प्रकार

(आ) भाषा प्रकार और

(इ) लेखन प्रकार ।

(अ) **प्रतीक प्रकार :** प्रतीक प्रकार में अंतः भाषिक, अंतर भाषिक

(अ) मानसिक-भाषा - मन में बोली जानेवाली भाषा ।

1. अनुवाद विज्ञान, डॉ. भोलानाथ तिवारी, पृ.21

2. अनुवाद कला : सिद्धान्त और प्रयोग, डॉ. कैलाशचन्द्र भाटिया, पृ.6

और अंतर प्रतीकात्मक तथा (आ) भाषा प्रकार : भाषा प्रकार में उपादान सापेक्ष 1. अनुवाद और 2. आशुअनुवाद (क्योंकि अनुवाद का उपादान लेखन होता है और आशु अनुवाद का मौखिक ध्वनि) और रूप सापेक्ष को समाहित किया जाता है । रूप सापेक्ष के अंतर्गत लिव्यन्तरण को लिया गया है । अर्थ पक्ष के अंतर्गत अनुवाद के चार भेद (1) शाब्दिक अनुवाद, (2) शब्द प्रतिशब्द अनुवाद (3) भावानुवाद, और (4) छायानुवाद किए गए हैं ।[1]

अनुवाद को निम्नलिखित तीन आधारों में बाँटा जा सकता है : 1. सीमा 2. भाषिक स्तर और 3. श्रेणी या पदक्रम के आधार पर । सीमा के आधार पर अनुवाद के दो प्रकार (क) पूर्ण अनुवाद और (ख) आंशिक अनुवाद किए जा सकते हैं । भाषिक स्तर के आधार पर अनुवाद के दो भेद (क) समग्रता में अनुवाद और (ख) निर्बद्ध अनुवाद तथा श्रेणी या पदक्रम के आधार पर (क) मुक्त अनुवाद (ख) शब्दानुवाद और (ग) शब्दशः अनुवाद आदि के रूप में अनुवाद के भेद किए जा सकते हैं ।[2]

डॉ. सुरेशकुमार ने अनुवाद वर्गीकरण के तीन आधार निश्चित किए हैं। (1) भाषा बाह्य (2) भाषा केंद्रित और (3) मिश्रित । इनमें भाषा केंद्रित आधार पर वर्गीकृत अनुवाद के प्रकारों को मुख्य तथा शेष को गौण माना है । प्रथम वर्ग, भाषा बाह्य अनुवाद के प्रकार में दो प्रकारों (क) पाठ के आधार की दृष्टि से पूर्ण और आंशिक अनुवाद, (ख) अनुवाद के अभिकर्ता की दृष्टि से (क) मानव अनुवाद और (ख) मशीन-अनुवाद में रखा है । द्वितीय वर्ग भाषा केन्द्रित प्रकारों को उन्होंने प्रमुख पाँच वर्गों (1) भाषा संरचना (2) भाषा शैली (3) भाषा माध्यम (4) भाषा प्रतीक और (5) भाषा पाठ के रूप में विवेचित किया है । तृतीय वर्ग मिश्रित प्रकारों या गौण अनुवाद में (1) शैक्षिक अनुवाद (2) रूप प्रधान अनुवाद (3) सारानुवाद (4) सामान्य गद्य अनुवाद (5) सूचनानुवाद (6) पुनरनुवाद और (7) परोक्ष अनुवाद को समाहित किया गया है ।[3]

अनुवाद के प्रकारों के बारे में अनेकों विद्वानों ने अपने-अपने मत प्रस्तुत किए हैं । अनुवाद के प्रकारों को एक चार्ट की सहायता से डॉ. राम गोपाल सिंह ने बड़ी ही सुंदरता से प्रस्तुत किया है । डॉ. राम गोपाल सिंह के अनुसार अनुवाद के प्रकारों का चार्ट निम्नलिखित हैं :[4]

---

1. अनुवाद भारती, अंक-5, अप्रैल-जून 1996 में सुश्री विनय सिंह का लेख 'अनुवाद के प्रकार', पृ.13
2. अनुवाद प्रक्रिया, रीतारानी पालीवाल, पृ.19
3. अनुवाद सिद्धांत की रूपरेखा, डॉ. सुरेशकुमार, पृ.73
4. अनुवाद विज्ञान : स्वरूप और समस्याएँ, डॉ. राम गोपाल सिंह, पृ.25

अनुवाद के प्रकार

गद्यत्व-पद्यत्व

1. गद्यानुवाद
2. पद्यानुवाद
3. मुक्तछंदानुवाद

साहित्यिक विधा

1. काव्यानुवाद
2. नाटकानुवाद
3. कथासाहित्यानुवाद
4. निबंधानुवाद
5. आलोचनानुवाद
6. रेखाचित्र, संस्मरण रिपोतार्ज आदि का अनुवाद

विषय

1. प्रशासनिक अनुवाद
2. वैज्ञानिक एवं तकनीकी अनुवाद
3. वाणिज्यानुवाद
4. विधि का अनुवाद
5. बैंकिंग साहित्य का अनुवाद
6. पत्रकारिता का अनुवाद
7. रेडियो और दूरदर्शन का अनुवाद
8. फिल्म, अनुवाद
9. संसदीय अनुवाद
10. धार्मिक साहित्य का अनुवाद

अनुवाद प्रकृति

माध्यम

1. अन्वयांतर
2. भाषांतर
3. प्रतीकांतर

प्रक्रिया

1. पाठधर्मी
2. प्रभावधर्मी

पाठ

1. शब्दानुवाद
2. भावानुवाद
3. छायानुवाद
4. रूपांतरण
5. व्याख्यानुवाद
6. सारानुवाद
7. वार्ता/आशु अनुवाद
8. पूर्ण/आदर्श अनुवाद

अनुवाद संकल्पना

1. मौखिक अनुवाद
2. लिखित अनुवाद
3. यंत्रानुवाद या कंप्यूटर अनुवाद
4. सहयोगज या टीम अनुवाद
5. समस्तानुवाद
6. सीमित अनुवाद
7. भाषापरक अनुवाद
8. तथ्यपरक अनुवाद
9. संस्कृतिपरक अनुवाद
10. सौंदर्यपरक अनुवाद

इस प्रकार अनुवाद के प्रति अनेक विद्वानों ने प्रकारों के संदर्भ में अपने-अपने मंतव्य प्रस्तुत किए । उपरोक्त मंतव्यों से हम अनुवाद के प्रकारों को निम्नलिखित रूप से व्याख्यायित कर सकते हैं :

(क) गद्यत्व-पद्यत्व के आधार पर अनुवाद :

अनुवाद के इस प्रकार के नाम से ही स्पष्ट है कि इसमें अनुवाद गद्य में या पद्य में होता है । इसके भी हम तीन विभाग कर सकते हैं ।

1. **गद्यानुवाद :** इसमें प्रायः मूल गद्य का ही गद्य में अनुवाद किया जाता है परंतु यह हंमेशा आवश्यक नहीं है । मूल पद्य का भी गद्य में अनुवाद किया जा सकता है ।
2. **पद्यानुवाद :** इसमें प्रायः मूल पद्य का ही पद्य में अनुवाद किया जाता है परंतु मूल गद्य का भी पद्य में अनुवाद किया जा सकता है ।
3. **मुक्त छंदानुवाद :** यह अनुवाद मुक्तछंद में ही होता है । यह अनुवाद पद्यानुवाद के बंधनों से मुक्त होता है । अर्थात् यह अनुवाद ताल-लय-तुक आदि से मुक्त होता है । स्रोत भाषा की सामग्री मुक्तछंद में हो तब ही मुक्त छंदानुवाद किया जा सकता है परंतु मूल गद्य या पद्य का भी मुक्त छंदानुवाद हो सकता है । शेक्सपियर की कई रचनाओं के हिन्दी अनुवाद इसके उदाहरण हैं ।

(ख) साहित्यिक विधा के आधार पर अनुवाद :

इस आधार पर अनुवाद के निम्नलिखित प्रकार हो सकते हैं :

1. **काव्यानुवाद :** मूल काव्य का ही अनुवाद इसमें किया जाता है । यह अनुवाद गद्य, पद्य या मुक्त छंद किसी में भी हो सकता है ।
2. **नाटकानुवाद :** मूल नाटक का ही अनुवाद इसमें किया जाता है । इसमें नाटक का अनुवाद नाटक में ही किया जाय यह आवश्यक नहीं है । नाटक का काव्य में, गद्य में आदि साहित्यिक विधाओं में अनुवाद किए जा सकते हैं ।
3. **कथा साहित्य का अनुवाद :** इसमें कथा साहित्य (कहानी तथा उपन्यास) का कथा साहित्य (कहानी तथा उपन्यास) में अनुवाद किया जाता है ।
4. **निबंधानुवाद :** इसमें मूल निबंध का लक्ष्य भाषा में निबंध रूप से अनुवाद किया जाता है ।

5. **आलोचनानुवाद :** किसी भी मूल आलोचना का इसमें अनुवाद किया जाता है ।

6. **रेखाचित्रानुवाद :** इसमें रेखाचित्र का लक्ष्य भाषा में रेखाचित्र रूप में अनुवाद किया जाता है ।

7. **संस्मरणानुवाद :** मूल संस्मरण का इसमें अनुवाद किया जाता है ।

8. **रिपोर्ताज का अनुवाद :** मूल किसी रिपोर्ताज का अनुवाद इसमें किया जाता है ।

(ग) विषय के आधार पर अनुवाद :

विषय के आधार पर अनुवाद के निम्नलिखित भेद किए जा सकते हैं :

1. **प्रशासनिक अनुवाद :** प्रशासन संबंधी मूल सामग्री का अनुवाद इसमें किया जाता है । इसे कार्यालयी अनुवाद भी कह सकते हैं । कार्यालय संबंधित सामग्री का अनुवाद इसके अंतर्गत आता है ।

2. **वैज्ञानिक एवं तकनीकी अनुवाद :** इसमें विज्ञान और तकनीकी साहित्य के अनुवाद को समाहित किया जा सकता है ।

3. **वाणिज्यानुवाद :** वाणिज्य से संबंधित सामग्री का इसमें अनुवाद किया जाता है ।

4. **विधि का अनुवाद :** इसके अंतर्गत विधि साहित्य के अनुवाद को लिया जा सकता है । विधि के साहित्य का इसमें अनुवाद किया जाता है ।

5. **बैंकिंग साहित्य का अनुवाद :** बैंक से संबंधित मूल सामग्री का इसमें अनुवाद किया जाता है ।

6. **पत्रकारिता का अनुवाद :** पत्रकारिता क्षेत्र के साहित्य का इसमें अनुवाद किया जाता है ।

7. **आकाशवाणी और दूरदर्शन का अनुवाद :** इस प्रकार के अनुवाद में आकाशवाणी तथा दूरदर्शन से संबंधित मूल सामग्री का अनुवाद किया जाता है ।

8. **फिल्म साहित्य का अनुवाद :** इस प्रकार के अनुवाद में फिल्म से संबंधित मूल सामग्री का अनुवाद किया जाता है । फिल्मों के क्षेत्र में आज इस प्रकार के अनुवाद की अधिक बोलबाला है ।

9. **संसद-साहित्य का अनुवाद :** संसद में होनेवाली गतिविधियों से संबंधित मूल सामग्री का इसमें अनुवाद किया जाता है ।

10. धार्मिक साहित्य का अनुवाद : धर्म से संबंधित मूल सामग्री का अनुवाद इस प्रकार के अनुवादों के वर्ग में आता है ।

(घ) **संकल्पना के आधार पर अनुवाद :**

संकल्पना के आधार पर अनुवाद के निम्नलिखित भेद किए जा सकते हैं ।

1. **मौखिक अनुवाद** : मुख से उच्चरित यादृच्छिक ध्वनि व्यवस्था का लक्ष्य भाषा की ध्वनि व्यवस्था में बदलना मौखिक अनुवाद है - अर्थात् मुँह से बोली हुई मूल सामग्री का अनुवाद करना मौखिक अनुवाद है ।

2. **लिखित अनुवाद** : मूल भाषा में लिखित सामग्री का अनुवाद लिखित अनुवाद है ।

3. **यंत्रानुवाद** : किसी मूल सामग्री का यंत्र द्वारा यथा कंप्यूटर आदि अनुवाद यंत्रानुवाद है ।

4. **सहयोगज अनुवाद** : इस प्रकार के अनुवाद को दो या अधिक अनुवादक मिलकर करते हैं - अर्थात् मूल सामग्री का अनुवादक किसी का सहयोग प्राप्त करके अनुवाद करे तो उसे सहयोगज अनुवाद कहा जाता है ।

5. **समस्यानुवाद** : मूल सामग्री का पूर्ण अनुवाद समस्तानुवाद की श्रेणी में आता है ।

6. **सीमित अनुवाद** : इस प्रकार के अनुवाद में मूल कृति के सीमित हिस्से का ही अनुवाद किया जाता है ।

7. **भाषापरक अनुवाद** : इसमें भाषा को ध्यान में रखकर अनुवाद किया जाता है । लक्ष्य भाषा और स्रोत भाषा दोनों की भाषिक इकाइयों का ध्यान रखा जाता है ।

8. **तथ्यपरक अनुवाद** : मूल के तथ्य को ध्यान में रखकर किया गया अनुवाद इस श्रेणी में आता है ।

9. **संस्कृतिपरक अनुवाद** : मूल संस्कृतिपरक सामग्री का अनुवाद इसके अंतर्गत आता है ।

10. **सौंदर्यपरक अनुवाद** : मूल सौंदर्यपरक सामग्री का इसमें अनुवाद किया जाता है ।

(ङ) **प्रकृति के आधार पर अनुवाद :**

प्रकृति के आधार पर अनुवाद को निम्नलिखित प्रकारों में बाँटा जा सकता है ।

1. **भाषिक माध्यम के अनुसार अनुवाद :**

अनुवाद की प्रकृति के आधार पर अनुवादक कार्य में प्रयुक्त भाषिक माध्यम पर आधारित अनुवाद इस प्रकार के अनुवाद में आता है । इसमें अनुवाद लक्ष्य भाषा की प्रतीक व्यवस्था द्वारा किया जाता है । इस प्रकार के अनुवाद के अन्य भेद भी किए जा सकते हैं ।

(अ) **अंत: भाषिक अनुवाद या अन्वयांतर :** किसी भाषा की एक प्रकार की प्रतीक व्यवस्था द्वारा व्यक्त अर्थ को उसी भाषा की अन्य प्रकार की प्रतीक व्यवस्था द्वारा व्यक्त करने का कार्य (अन्वयों का अंतरग) अन्वयांतर या अंत:भाषिक अनुवाद कहलाता है । इस प्रकार के अनुवाद में शब्द चयन एवं शैली भेद दिखाई देता है । शेक्सपियर के पद्य नाटकों को चार्ल्स लैंब ने गद्य में लिखा था यह अन्वयांतर है । उदा. 'आइए' का अन्वयांतर 'तशरीफ़ लाइए' है ।

(आ) **अंतरभाषिक अनुवाद या भाषान्तर :** एक भाषा की प्रतीक व्यवस्था द्वारा व्यक्त अर्थ को दूसरी भाषा की प्रतीक व्यवस्था द्वारा व्यक्त करना अंतरभाषिक अनुवाद या भाषान्तर है ।

(इ) **अंतर प्रतीकात्मक अनुवाद या प्रतीकांतर :** अभिव्यक्ति के भाषा माध्यम को अन्य अभिव्यक्ति माध्यम में अनुवाद करना प्रतीकांतर है। महाभारत, रामायण आदि की कथाओं से एक विचार लेकर मूर्तियों या झाँकियों द्वारा बनाए गए दृश्य प्रतीकांतर के उदाहरण हैं ।

2. **अनुवाद-प्रक्रिया के आधार पर अनुवाद :**

अनुवाद-प्रक्रिया के आधार पर अनुवाद को निम्नलिखित भेदों में बाँट सकते हैं ।

(अ) **पाठधर्मी अनुवाद :** अनुवाद के इस उपभेद में कथ्य और अभिव्यक्ति का विशेष महत्त्व होता है । इसमें मूल पाठ की भाषा के विभिन्न स्तरों का विश्लेषण करके उसमें निहित अर्थ को लक्ष्य भाषा के पाठ में मूल की संरचना के अनुसार ढालना होता है । विधि साहित्य का अनुवाद इसका उत्तम उदाहरण है ।

(आ) **प्रभावधर्मी अनुवाद :** मूल पाठ के प्रभाव को आधार मानकर किया गया अनुवाद प्रभावधर्मी अनुवाद कहलाता है । अर्थात् मूल भाषा में व्यक्त विचारों का प्रभाव लक्ष्य भाषा में भी व्यक्त हो तो वह अनुवाद प्रभावधर्मी अनुवाद है ।

3. पाठ के आधार पर अनुवाद :

पाठ के आधार पर अनुवाद को निम्नलिखित भागों में बाँट सकते हैं ।

(अ) **शब्दानुवाद :** अनुवाद के इस प्रकार में मूल भाषा की शाब्दिक इकाइयों के लिए लक्ष्य भाषा की समतुल्य शाब्दिक इकाइयों को रखा जाता है । अर्थात् इसमें लगभग प्रत्येक शब्द का अनुवाद किया जाता है । विधि, विज्ञान, न्याय, गणित आदि के क्षेत्रों में अधिकांशतः शब्दानुवाद ही किया जाता है । इसके भी अन्य उपभेद किए जा सकते हैं :

(अ-1) **शब्दशः अनुवाद :** इसमें मूल भाषा के पाठ के शब्दक्रम के अनुसार अनुवाद किया जाता है । बाइबिल के शुरूआत के अनुसार इसी क्रम के थे । इस प्रकार के अनुवाद में अर्थ संप्रेषण की संभावना बहुत ही कम रहती है अतः शब्दशः अनुवाद, अनुवाद का निकृष्ट रूप है ।

(अ-2) **शाब्दिक अनुवाद :** इसमें लक्ष्यभाषा की वाक्य रचना के अनुसार मूल के प्रत्येक शब्द का शब्दकोशीय अनुवाद किया जाता है ।

(अ-3) **शब्दाश्रयी अनुवाद :** इस अनुवाद को समतुल्य अनुवाद भी कहा जाता है । इसमें मूल की प्रत्येक भाषिक अभिव्यक्ति का लक्ष्य भाषा में प्राप्त भाषिक समतुल्य शब्दों के आधार पर अनुवाद किया जाता है ।

त्रुटियों से रहित किया गया शब्दानुवाद ही आदर्श अनुवाद है जो मूल के भाव को पूर्णतः लक्ष्य भाषा में व्यक्त करता हो ।

(आ) **भावानुवाद :** मूल पाठ में व्यक्त भावों को लक्ष्य भाषा में उतारना भावानुवाद है । अर्थात् मूल के वाक्यों का अनुवाद करने के बजाय मूल के भावों का अनुवाद किया जाता है ।

(इ) **छायानुवाद :** इस प्रकार के अनुवाद में मूल पाठ की मात्र छाया ही होती है । मूल कृति को पढ़कर अनुवादक ने जो अनुभव किया उसके मन पर जो प्रभाव पड़ा उसके संदर्भ में लक्ष्य भाषा में वह लिखता है उसे छायानुवाद कहते हैं । इसमें अनुवादक को छोड़ने-जोड़ने की पूरी छूट रहती है । यह एक प्रकार का पुनःसृजन है ।

(ई) **रूपान्तरण :** मूल पाठ के रूपों में परिवर्तन करके किया गया अनुवाद रूपान्तरण है । यह अनुवाद रूप परिवर्तन की प्रक्रिया द्वारा किया जाता है । मूल के सामाजिक परिवेश में परिवर्तन करके, पात्रों के नाम, संख्या, देश के नाम, काल, संस्कृति परिवेश आदि में परिवर्तन किया गया अनुवाद रूपान्तरण कहलाता है ।

(उ) **आशु अनुवाद या वार्तानुवाद :** दो भिन्न भाषा-भाषियों के वार्तालाप का तुरंत मौखिक अनुवाद वार्तानुवाद या आशु अनुवाद कहलाता है ।

(ऐ) **पूर्णानुवाद या आदर्शानुवाद :** मूलपाठ के कथ्य, प्रतीक, भाषिक इकाइयों आदि को ध्यान में रखकर लक्ष्य भाषा में उनके समकक्ष, समतुल्य इकाइयों को रखकर किया गया वह अनुवाद जो मूल के भावों को साथ लेकर लक्ष्य भाषा की प्रकृति की सजता समेटे हुए मूल की-सी प्रतीति कराता हो वह पूर्णानुवाद या आदर्शानुवाद कहलाता है । आदर्श अनुवाद एक संकल्पना है फिर भी अनुवाद का यही रूप सर्वोत्तम है ।

इस प्रकार अनुवाद के उपरोक्त भेद किए जा सकते हैं ।